प्रकाशकका कुछ निवेदन

दिगम्बर जैन समाजमें कुछ दिनोंसे बहुतसी शास्त्रविरुद्ध बातोंपर तर्क वितर्क हो रहे हैं उनमें स्त्री-मुक्ति और केवलिकवलाहार ये दो विषय भी हैं। श्वेतांबर संप्रदायके साथ यद्यपि इन विषयोंपर पहिले बहुत कुछ विचार हो चुका है और हमारे न्यायके ग्रंथोंमें उनके पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष भी पाये जाते हैं तो भी कालदोषसे संस्कृत विद्या बुद्धिकी हीनता हो जानेके कारण उनको समझनेकी हममें यथेष्ट शक्ति नहीं रही है। यही कारण है कि प्रायः समस्त बातें सुस्पष्ट सयुक्तिक और अखंडनीय होते भी हम उन्हें खंडनीय समझ विपक्षियोंकी बातोंमें फंस जाते हैं। हमारे वर्तमानकालीन प्रसिद्ध प्रसिद्ध पंडितप्रवरोंने उनका यद्यपि समुज्ज्वल भाषामें अच्छीतरह समाधान कर दिया है तो भी प्राचीन आचार्य कृत किसी ग्रंथका देश भाषामें अनुवाद कर प्रगट करना ही अत्यंत आवश्यक समझा गया इसलिए संस्थाने इसका जीर्णोद्धार कर प्रकाशन किया है आशा है हमारे जिज्ञासु पाठक पाठिका इससे अपना वास्तविक हित करेंगे।

यह ग्रंथ हरीभाई देवकरण जैनग्रंथमालामें शोलापुरनिवासी गांधी हरीभाई देवकरणजीकी गद्दीके मालिक संस्थाके संरक्षक श्रीमान् शेठ हीराचंद्र रामचंद्रजीके प्रदत्त द्रव्यसे मुद्रित सिद्धांतराज गोम्मटसारजीकी आई हुई क्रमिक न्योछावरसे छपाया जाता है।

हमारे धर्मात्मा सज्जन अन्य भाइयोंसे भी यही प्रार्थना है कि वे संस्थाके दानी सहायक बन कर एक बार धर्मार्थ द्रव्य प्रदान कर दें और सैकडों ग्रंथोंके जीर्णोद्धार करनेका महान पुण्य लेते रहें।

निवेदक—

श्रीलाल जैन (मंत्री)

श्री [illegible]

सनातनजैनग्रंथमाला ।

२२

श्रीशुभचंद्राचार्यविरचित

संशयिवदनविदारण ।

निराहारं निरौपम्यं जिनं देवेंद्रवंदितम् ।

पुमांसं शुभचंद्रं च वंदे निशादिसद्गुणम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो कवलाहाररहित हैं, उपमारहित हैं, देवोंके स्वामी इंद्रादि द्वारा वंदनीय हैं, निशा आदि अनेक सद्गुणोंसे सुशोभित हैं और चंद्रमाके समान निर्मल हैं ऐसे पुरुषस्वरूप अरहंत देवको मैं वंदना करता हूं। अथवा जो आहाररहित हैं, उपमारहित हैं, इंद्रादिकोंके द्वारा वंदनीय हैं, निशा आदि सद्गुणोंसे सुशोभित हैं और जिन अर्थात् कर्मोंके नाश करनेमें तत्पर हैं ऐसे पुरुषस्वरूप आचार्य शुभचंद्रको मैं नमस्कार करता हूं।

१ इस ग्रन्थके कर्ताका नाम शुभचन्द्र है।

शंकाकार कहता है कि इस श्लोकमें जो अरहंत भगवानका निराहार विशेषण दिया है वह सहन करने योग्य नहीं है क्योंकि जो निराहार रहता है उसके शरीरकी स्थिति कभी रह ही नहीं सकती। कदाचित् यह कहो कि यदि केवली भगवान कवलाहार ग्रहण करेंगे तो फिर वे सर्वज्ञ नहीं हो सकेंगे सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कवलाहार और सर्वज्ञपनेका परस्पर कोई विरोध नहीं है कदाचित् यह कहो कि कवलाहार और सर्वज्ञपनेका विरोध है तो वह विरोध साक्षात् है अथवा परंपरासे है? कदाचित् यह कहो कि उन दोनोंका साक्षात् विरोध है तो फिर जितने विद्वान मुनि हैं वे सब मारे जांयगे? क्योंकि यह वात किसी तरह बन नहीं सकती कि सर्वज्ञ होनेपर फिर वह कवलाहार ग्रहण कर न सके? अथवा प्राप्त हुए भोजनको मुंह तक ले जा न सके? अथवा संपूर्ण निर्मल केवलदर्शन वा केवलज्ञानके भाग जानेकी आशंकासे (डरसे) उसे खा न सके। सर्वज्ञ होनेपर भी कवलाहार ग्रहण करने, उसे मुंह तक ले जाने और खा लेने की संभावना पूर्ण रीतिसे रहती है क्योंकि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन सब कर्मों का समूळ नाश हो चुका है। कदाचित् यह कहो कि कवलाहार और सर्वज्ञपनेमें परंपरासे विरोध आता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि परंपरासे उन दोनोंके विरोधमें जो दोष मान रक्खे हैं वे कभी बन ही नहीं सकते हैं। भला कहिए तो सही सर्वज्ञपनेके साथ आहारके व्यापकका विरोध है? आहारके कारणका विरोध है? आहारके कार्यका विरोध है अथवा आहारके सहचरोंका विरोध है? ये व्यापक कारण कार्य आदि सभी परस्पर परिहार (एकके अभावमें दूसरेका रहना) अथवा सहानवस्था [साथ न रहना] इन दोनों रूपसे सर्वज्ञपनेके साथ विरुद्ध नहीं हो सकते। कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् ज्ञानके साथ कवलाहार रहता ही

नहीं ऐसा मान लिया जाय तो फिर तुम्हारे ज्ञानके साथ भी आहारका विरोध होना चाहिए। ज्ञानके साथ आहारके व्यापकका परस्पर परिहाररूप विरोध होना ही चाहिए। इसतरह तुम्हारे भी आहारका अभाव होना चाहिए (क्योंकि तुम्हारे ज्ञान है, ज्ञानके साथ आहार रह नहीं सकता।) कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् ज्ञानके साथ आहारका सहानवस्थारूप विरोध स्वीकार करो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि विशेष शक्तिके होनेसे पेटरूपी गुफाके एक कोनेमें आहारका पटक लेना ही उसकी व्यापकता है। वह आहारकी व्यापकता सर्वज्ञ होनेपर भी खूब अच्छी तरह सिद्ध होती है क्योंकि उस समय वीर्यांतराय कर्म विल्कुल नष्ट हो जाता है। उस सर्वज्ञ अवस्थामें आहारको पेटरूपी गुफामें पटक लेनेका कारण विशेष शक्ति है ही इसलिए सर्वज्ञके साथ आहारके व्यापकका किसी तरह विरोध नहीं आ सकता।

कदाचित् सर्वज्ञपनेके साथ आहारके कारणोंका विरोध कहा जाय सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कारण दो प्रकारके होते हैं बाह्य और अभ्यंतर। बाह्य कारण खाने योग्य भोजन पानी आदि है, अथवा खानेके साधन बर्तन आदि हैं अथवा औदारिक शरीर है। कदाचित् खाने योग्य भोजनादिके साथ विरोध कहो, सो भी ठीक नहीं क्योंकि सर्वज्ञके ज्ञानके साथ भोजन पानादिकका विरोध कहा जायगा तो सर्वज्ञके ज्ञानके समान हमारे ज्ञानके साथ भी विरोध होना चाहिये और इस हिसाबसे आहार ग्रहण करनेके कारण हमारा ज्ञान विल्कुल मंद हो जाना चाहिये। क्योंकि जिस अंधकारके समूहका विरोध अत्यन्त मध्यान्हके सूर्यकी किरण-समूहोंके साथ होता है उसी अंधकारके समूहका विरोध दीपकके प्रकाशसे न होता हो यह बात नहीं है किन्तु जैसा सूर्यके साथ उसका विरोध है वैसा ही दीपकके प्रकाशके साथ उसका विरोध

है इस रीतिसे जिस समय हमारे हथेलीरूपी तराजूसे तुलेहुए (हथेलीपर रक्खे हुए) आहारका ज्ञान उत्पन्न होता है उससमय हमारे भी आहारका अभाव होना चाहिये। परन्तु होता तो नहीं है इसलिए ज्ञानके साथ आहारका कोई विरोध सिद्ध नहीं होता। कदाचित् सर्वज्ञके ज्ञानके साथ आहारके कारण वर्तन आदिकोंका विरोध कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अरंहत भगवान तो पाणिपात्र होते हैं अर्थात् उनके तो अन्य वर्तन आदिकोंका अभाव रहता ही है। कदाचित् अन्य केवलियोंके लिये कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अन्य केवलियोंके वर्तन आदिकोंका स्वरूपसे ही विरोध होता है अथवा उन वर्तन आदिकोंमें रहनेवाली ममत्व बुद्धि से विरोध होता है। पहला पक्ष कहना ठीक नहीं हैं क्योंकि यदि ज्ञानके साथ वर्तन आदिकोंके विरोध होगा तो फिर हमारे ज्ञानके साथ भी उनका विरोध होना चाहिये और इस हिसाबसे हमारे या तो ज्ञानका अभाव होना चाहिये या वर्तन आदिकोंका अभाव होना चाहिये। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् ममत्व बुद्धिके साथ विरोध स्वीकार करो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली ममत्वरहित होते हैं इसलिये उन वर्तन आदिकोंमें उनकी ममत्व बुद्धि होती ही नहीं। कदाचित् यह कहो कि वर्तन आदिकोंके होने पर उनमें उनकी ममत्व बुद्धि होनी ही चाहिये सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे शरीरके होनेपर उसमें भी उनकी ममत्व बुद्धि माननी पडेगी। इसलिये पात्रोंके साथ भी ज्ञानका विरोध नहीं होता। इसीतरह औदारिक शरीरके साथ भी सर्वज्ञपनेका विरोध नहीं हो सकता क्योंकि केवल ज्ञान होनेपर औदारिक शरीरका अभाव हो ही जाता है। इस प्रकार बाह्य कारणोंके साथ विरोध हो नहीं सकता। कदाचित् अभ्यंतर कारणोंके साथ विरोध मानोगे सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अभ्यं-

तर कारण दो हैं—शरीर अथवा कर्म। सो शरीरके साथ विरोध हो नहीं सकता क्योंकि जिससे खाये हुए अन्न पानीका पाक होता है अन्नपानी पचता है ऐसे अंतरंग तेज अथवा भीतर रहनेवाली शरीरकी गर्मीको तेज वा तैजस शरीर कहते हैं उसकी सत्ता केवलज्ञानके साथ तुमने भी स्वीकार की है। इसलिए विरोध होता नहीं। कदाचित् कर्मोंके साथ विरोध कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि कर्म दो प्रकारके हैं घातिया अघातिया। यदि घातिया कर्मोंके साथ विरोध मानोगे तो मोहनीयके साथ विरोध मानोगे अथवा अन्य घातिया कर्मोंके साथ। मोहनीयको छोडकर अन्य घातिया कर्मोंका विरोध हो नहीं सकता क्योंकि ज्ञानावरणका कार्य ज्ञानका घात करना है, दर्शनावरणका कार्य दर्शनका घात करना है और अंतराय कर्मका कार्य वीर्यकी शक्तिका घात करना है। ये तीनों कर्म यही कार्य करते हैं और सर्वज्ञके इन तीनों कर्मोंका अभाव तुमने (दिगंबरियोंने) भी स्वीकार किया है इसलिए वे कर्म अपना कार्य ही किस प्रकार कर सकेंगे और सर्वज्ञके साथ विरोध ही किस प्रकार आ सकेगा? यदि मोहको मानो तो भूख लगनेकी इच्छारूप मोह कारण है अथवा सामान्य मोह कारण है। यदि भूख लगनेकी इच्छारूप मोहको कारण मानते हो तो वह सर्वज्ञके लिए कारण है या हम तुम लोगोंके लिए? यदि सर्वज्ञके लिए कारण मानते हो तो दुखके साथ कहना पडता है कि इसमें कोई प्रमाण नहीं है। कदाचित् यह कहो कि भगवानके भोजनकी क्रिया इच्छापूर्वक होती है क्योंकि वह चेतनकी क्रिया है जो जो चेतनकी क्रियाएं होती हैं वे सब इच्छापूर्वक होती हैं जैसे हमारे तुम्हारे भोजनकी क्रियाएं इच्छापूर्वक ही होती हैं। इसतरह सर्वज्ञके भूख लगनेकी इच्छारूप मोहको कारण माननेमें प्रमाण मिलता है क्योंकि कोई भी प्रमाण करनेवाला पुरुष पहले उसको जानता है फिर

उसकी इच्छा करता है तदनंतर उसके लिए प्रयत्न करता है और फिर उस कामको करता है। परंतु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे सोनेवाले, मदोन्मत्त और मूर्च्छित लोगोंके द्वारा व्यभिचार आता है। भावार्थ—सोनेवाले, उन्मत्त और मूर्च्छित लोगोंके क्रियाएं तो होती हैं परंतु वे इच्छापूर्वक नहीं होतीं। इसीतरह सर्वज्ञके भी विना इच्छाके क्रियाएं होती हैं इसलिए सर्वज्ञके लिए इच्छारूप मोह कारण नहीं हो सकता। यदि हम तुम लोगोंके लिए मानो तो ठीक ही है इससे तो हमारी वातकी और सिद्धि ही होती है। कदाचित् मोह सामान्य को कारण मानो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि भगवानके जिस प्रकार गमन करना, ठहरना, बैठना और उपदेश देना आदि क्रियाएं वेदनीय कर्मके उदयसे होती हैं उसीप्रकार भोजनरूप क्रिया भी वेदनीय कर्मके ही उदयसे सिद्ध होती है। यदि भोजन करना मोहनीय कर्मके उदय से मानोगे तो गति स्थिति आदि क्रियाएं भी मोहनीय कर्मके उदयसे माननी पडेंगी और भगवान तो मोहनीय कर्मसे रहित हैं इसलिए मोहनीय कर्मके अभाव होनेसे जिसप्रकार भोजनका अभाव मानते हो उसीप्रकार गति स्थिति आदि क्रियाओंका अभाव भी मानना पडेगा और फिर गति स्थिति उपदेश आदिका अभाव मान लेनेपर उनसे तीर्थकी प्रवृत्ति ही किस प्रकार हो सकेगी? कदाचित् यह कहो कि गति स्थिति आदिमें गति स्थिति आदि नाम कर्म ही कारण है इसमें मोहनीय कर्म कारण नहीं है सो यह कहना भी प्रमाणसे कहे हुए अच्छी युक्तिरूपी गोफन के द्वारा चलाये हुए मिट्टीके ढेलेके समान शोभा नहीं देता क्योंकि जैसे गति आदिमें नाम कर्म कारण है उसी प्रकार कवलाहारमें भी वेदनीय कर्म कारण है ऐसी हालतमें मोहनीय कर्म तो किसी तरह कारण नहीं हो सकता?

कदाचित् अघातिया कर्मोंको कारण कहो सो क्या आहार पर्याप्ति कारण है वा वेदनीय कर्म कारण है। अथवा दीर्घायुका उदय कारण है इन तीनोंमेंसे कौनसा स्वीकार करते हो। कदाचित् पहिलेके दोनोंको मिलाकर स्वीकार करते हो अर्थात् आहारपर्याप्ति नाम कर्मके उदय होनेपर वेदनीय कर्मके उदयसे बडी जबर्दस्त जलती हुई पेटकी अग्निसे जलता हुआ मनुष्य आहारको ग्रहण करता है। इसी तरह तुम भी आहारको ग्रहण करते हो परन्तु तुम्हारा सर्वज्ञके साथ विरोध तो होता नहीं। ऐसा तुम भी स्वीकार करते हो। कदाचित् यह कहो कि मोहनीय कर्मकी सहायतासे आहार पर्याप्ति और वेदनीय दोनों ही कर्म उसके (आहारके) कारण होते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार गति आदि कर्म, विना मोहनीयकी सहायतासे ही अपना काम करते हैं उसीप्रकार आहारपर्याप्ति और वेदनीय कर्म भी विना मोहनीयकी सहायतासे अपना काम करते हैं इसमें क्या विरोध आता है? कदाचित् यह कहो कि अशुभप्रकृतियां ही मोहनीय कर्मकी सहायताकी अपेक्षा रखती हैं गति आदि शुभप्रकृतियों को मोहनीयकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। यह असाता वेदनीय अशुभ है इसलिए इसको मोहनीकी सहायताकी आवश्यकता है परंतु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि यह तुम्हारी कल्पना तो विल्कुल अपूर्व है। अरे ऐसा तो हम तुम लोगोंमें देखा जाता है अर्थात् मोहनीकी सहायतापूर्वक आहारपर्याप्ति और असाता वेदनीयका उदय हम तुम लोगोंमें देखा जाता है सर्वज्ञमें नहीं। यदि हम तुममें रहनेवाला नियम ही सब जगह मान लिया जायगा तो फिर हमारे तुम्हारे तो शुभप्रकृतियां भी मोहनीय कर्मकी महिमासे घिरी हुई रहकर ही अपना कार्य करनेमें चतुर दिखाई देती हैं इसलिए शुभप्रकृतियां भी मोहनीयकी सहायतासे ही अपना

कार्य करती हैं ऐसा भी मान लेना चाहिए। परन्तु ऐसा माना तो नहीं है। शुभप्रकृतियोंके समान आहारपर्याप्ति और वेदनीय कर्म मोहनीयकी सहायतासे ही अपना काम करते हैं यह बात नहीं है किंतु ये दोनों ही कर्म स्वतंत्र रीतिसे ही अपना कार्य करते हैं और ये दोनों ही कर्म केवली भगवानके हैं इसलिये उनके कवलाहार माननेमें किसी तरहकी बाधा नहीं आती। इसीतरह बहुत दिन तक जीवित रहनेका कारण ऐसी दीर्घ आयु भी भगवानके विरोध नहीं रखती क्योंकि दीर्घ आयुके उदयसे क्षुधा वेदना प्रगट होती है और दीर्घ आयुका उदय भगवानके है ही इसलिए भगवानके कवलाहारकी सिद्धि बहुत अच्छी तरहसे सिद्ध होती है। इसीतरह सर्वज्ञपनेके साथ आहारके कार्यका भी विरोध नहीं आता। क्योंकि सर्वज्ञपनेके साथ विरुद्ध आनेवाले आहारके कार्य कितने हैं? रसना इंद्रियसे उत्पन्न हुआ मतिज्ञान है? वा ध्यानमें विघ्न होना है? परोपकार करनेका अंतराय है? अथवा विसूचिका आदि रोग हैं ईर्यापथ है? अथवा मल मूत्र आदि ग्लानि उत्पन्न करनेवाले कर्म हैं? धातुके उपचय आदिसे (धातु उपधातुओंकी वृद्धि होनेसे) उत्पन्न होनेवाली स्त्री आदिकोंके भोगनेकी इच्छा है? अथवा इनमेंसे कौनसा कार्य सर्वज्ञपनेके विरुद्ध होता है? कदाचित् रसना इंद्रियसे उत्पन्न हुए मतिज्ञानके साथ सर्वज्ञपनेका विरोध है ऐसा पहला पक्ष भी स्वीकार करो, सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवल कवलाहारका संयोग हो जाने मात्रसे ही मतिज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती। कदाचित् यह कहो कि सर्वज्ञके भोजन करनेमें जिह्वाके द्वारा रसका आस्वादन तो होता ही है इसलिये उनको मतिज्ञान हो ही जायगा सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि पदार्थोंका केवल इंद्रियोंके द्वारा संबंध होने मात्रसे ही मतिज्ञान उत्पन्न नहीं हो जाता किन्तु पदार्थोंका इंद्रियोंके द्वारा

संबंध होनेपर मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेसे मतिज्ञान उत्पन्न होता है। परन्तु केवली भगवानके ज्ञानावरण दर्शनावरण दोनों ही विल्कुल नष्ट हो जाते हैं इसलिये मतिज्ञानावरण कर्मका अभाव होनेसे उनके मतिज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि विना मतिज्ञानावरण कर्मके केवल इंद्रियोंके द्वारा पदार्थोंका संबंध होने मात्रसे ही मतिज्ञानकी उत्पत्ति मान लोगे तो तुरई आदि बाजोंके जो घन तत वितत शुचिर आदि शब्द होते हैं (साडे बारह करोड तरहके बाजे बजते हैं) उनका कर्ण इंद्रियके साथ सम्बंध होनेसे भी मतिज्ञान उत्पन्न हो जाना चाहिए। देव लोग जो निरंतर फूलोंकी वर्षा करते हैं उनकी सुगंधका घ्राण इंद्रियके साथ संबंध होनेसे भी मतिज्ञान उत्पन्न हो जाना चाहिए। सुगंधित वायु और सिंहासनके स्पर्शसे स्पर्शनेंद्रियके द्वारा भी मतिज्ञान उत्पन्न हो जाना चाहिए। परन्तु होता तो नहीं है, इसलिये भोजनसे भी नहीं होना चाहिए। इससे सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञपनेके साथ रसना इंद्रियसे उत्पन्न हुए मतिज्ञानका कोई विरोध नहीं आता। इसीतरह ध्यानका विघ्न होनेरूप आहारके कार्यसे भी सर्वज्ञपनेके साथ कोई विरोध नहीं आता, क्योंकि केवली भगवानके सिद्ध होनेसे पहले तक ध्यानकी सत्ता मानी ही है और उसी अवस्थामें वे कवलाहार ग्रहण करते हैं इसलिए सर्वज्ञके ध्यानमें विघ्न हो ही नहीं सकता है। फिर उसके साथ विरोध कैसा? इसीप्रकार परोपकार करनेमें अंतराय होनेरूप आहारके कार्यके साथ भी सर्वज्ञपनेका विरोध नहीं आता क्योंकि वे केवली भगवान सवेरे, दोपहरको और शामको कुछ कम एक पहर तक धर्मोपदेश देते हैं और उसी समय सिंहासनपर विराजमान होते हैं। तीसरे पहर एक मुहूर्ततक ईशान दिशामें शरण लेने योग्य दूसरे कोटके भीतर जहां गणधर देवोंको छोडकर अन्य मनुष्य वा तिर्यंच कोई भी न

देख सकें ऐसे देवच्छंदक नामके दिव्य स्थानमें जाकर पर्यंक आसनसे अथवा और किसी सुखासनसे विराजमान होते हैं और वहींपर गणधर देवोंके द्वारा लाए हुए आहारका भोजन करते हैं। इस एक मुहूर्तको छोडकर बाकीके समयमें वे सदा उपकार करते ही रहते हैं। इसलिए परोपकार करनेमें अंतराय होनेरूप आहारके कार्यके साथ सर्वज्ञपनेका कोई विरोध नहीं आता। इसीतरह विसूचिका आदि व्याधि होनेरूप आहारके कार्यके साथ भी विरोध नहीं आता क्योंकि वे जानकर हितरूप थोडा आहार ग्रहण करते हैं तथा ईर्यापथरूप आहारके कार्यके साथ भी विरोध नहीं आता क्योंकि ईर्यापथकी उत्पत्ति तो गमन करने आदि क्रियाओंसे भी उत्पन्न होती है। इसीतरह मल मूत्र आदि ग्लानि उत्पन्न करनेवाले कर्मोंसे भी सर्वज्ञपनेका कोई विरोध नहीं आता क्योंकि मल मूत्र आदिके करनेमें केवली भगवानको ही घृणा उत्पन्न होगी या अन्य लोगोंको ? वह घृणा केवली भगवानको हो नहीं सकती क्योंकि उनके मोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो गया है इसलिये उनके घृणा उत्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। कदाचित् यह कहो कि अन्य लोगोंको घृणा उत्पन्न होती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जब केवली भगवानके मलमूत्र करते समय उन लोगोंको घृणा उत्पन्न होती है तो फिर जब वे ही केवली भगवान मनुष्य भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्क वैमानिक और उनकी हजारों स्त्रियोंसे शोभायमान, सभामें वस्त्ररहित नग्न विराजमान होते हैं तब उन्हें देखकर उन लोगोंको घृणा क्यों नहीं होती ? कदाचित् यह कहो कि केवली भगवान सातिशय विराजमान रहते हैं इसलिए मनुष्य, देव आदि अन्य लोगोंको उनकी नग्नतासे घृणा उत्पन्न नहीं होती तो फिर इसी हेतुसे

१ जहां विराजमान होनेके लिए देव लोग प्रार्थना करें उस स्थानको देवच्छंद कहते हैं।

अर्थात् भगवानके सातिशय विराजमान होनेसे उनका मल मूत्र करना भी देव मनुष्य आदिकी मांसरूप आंखोंसे दिखाई नहीं देता ? फिर भला उन्हें घृणा कैसे उत्पन्न हो सकती है और उसके साथ सर्वज्ञपनेका विरोधरूप दोष कैसे आ सकता है ? यह तीर्थकरोंकी वात है । तीर्थंकरोंके सिवाय अन्य जो सामान्य केवली हैं, वे किसी एकांत स्थानमें मलमूत्र आदि करते हैं इसलिए वहां भी कोई दोष नहीं आ सकता । इसीप्रकार सातवें आठवें कार्यके साथ अर्थात् स्त्रियोंके साथ भोग करनेकी इच्छा और निद्रारूप आहारके कार्यके साथ भी कोई विरोध नहीं आता, क्योंकि स्त्रियोंके साथ भोग करनेकी इच्छा मोहनीय कर्मका कार्य है और निद्रा दर्शनावरण कर्मका कार्य है । तथा मोहनीय कर्म और दर्शनावरण कर्म दोनों ही केवली भगवानके नहीं हैं इसालिये इन दोनोंका भी अभाव होनेसे सर्वज्ञपनेके साथ इनका कोई विरोध नहीं आता । इसप्रकार सर्वज्ञपनेके साथ आहारके किसी भी कार्यका विरोध नहीं आता है ।

इसीप्रकार कवलाहारके सहचरोंका विरोध भी सर्वज्ञपनेके साथ नहीं होता । क्योंकि कवलाहारका सहचर (साथ रहनेवाला) छद्मस्थपना (अल्पज्ञानी होना) है या इससे कोई भिन्न है ? छद्मस्थपनेके साथ सर्वज्ञपनेका विरोध कह नहीं सकते क्योंकि सर्वज्ञपनेके साथ छद्मस्थपना नहीं रहता है । इसमें बादी प्रतिवादी दोनोंको ही कोई विवाद नहीं है इसलिए असिद्ध होनेसे दोनोंका विरोध कहा ही नहीं जा सकता । हां ! हम तुम लोगोंमें आहार और छद्मस्थका साहचर्य देखा जाता है । केवल इसी परसे यह नियम मान लोगे तो फिर गमन करना आदि

क्रियाओंके साथ भी छद्मस्थताका साहचर्य मानना पडेगा और सर्वज्ञमें उन क्रियाओंका अभाव मानना पडेगा इसलिए यह नियम बन नहीं सकता। कदाचित् हाथ मुंह आदिके चलनेको कवलाहारका सहचर मानोगे तो वह भी सर्वज्ञपनेके साथ विरुद्ध नहीं हो सकता क्योंकि सर्वज्ञ में हाथ मुह आदिका चलना पाया जाता है। इसलिए कवलाहार और सर्वज्ञपनेमें परस्पर कोई विरोध न होनेसे केवली भगवानके क्षुधाका अभाव सिद्ध नहीं होता।

कदाचित् तुम इस बातको न मानो तो फिर केवली भगवानके किसी प्रमाणसे क्षुधाका अभाव निश्चय करना चाहिए? जिस प्रमाणसे तुम केवलीके क्षुधाका अभाव सिद्ध करोगे वह प्रमाण आगम है वा इससे कोई दूसरा है? आगमको प्रमाण कह नहीं सकते क्योंकि सिद्ध भगवानके समान सयोग केवलीके क्षुधाके अभावको प्रतिपादन करनेवाला कोई आगम संभव हो ही नहीं सकता? कदाचित् किसी दूसरे प्रमाणसे सिद्ध करना चाहो तो किससे करोगे? केवली भगवानके स्वभावकी उपलब्धि (प्राप्ति) नहीं होती, इसलिए उनके क्षुधाका अभाव है? अथवा अन्य किसी हेतुसे? इनमेंसे पहला पक्ष स्वीकार कर नहीं सकते क्योंकि केवलियों का स्वभाव विप्रकृष्टरूप होता है। जब उनका स्वभाव विप्रकृष्टरूप है तब फिर उनके स्वभाव की उपलब्धि है ही नहीं। यह बात युक्ति संगत नहीं बन सकती क्योंकि केवली भगवानका स्वभाव एक ज्ञानसे सम्बंध रखनेवाले अनेक पदार्थोंको ग्रहण करनेवाला होता है इसलिए उनके स्वभावकी उपलब्धिका अभाव किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकता।

कदाचित् किसी दूसरे हेतुसे सिद्ध करो तो फिर बतलाना चाहिये कि विधिरूप हेतुसे क्षुधा का अभाव सिद्ध करोगे या निषेधरूप हेतुसे सिद्ध करोगे? यदि किसी विधिरूप हेतुसे क्षुधाका

अभाव सिद्ध करो तो वह विधिका वाच्य क्षुधाका विरोधी होना चाहिये क्योंकि अविरुद्धोपलब्धिरूप हेतुसे अभावकी सिद्धि कभी नहिं हो सकती। भावार्थ—(जैसे पानी और अग्निका विरोध है, जहां पानी होता है वहां अग्नि नहीं होती। इसीप्रकार क्षुधाके अभावको सिद्ध करनेवाला हेतुका वाच्य कोई ऐसा होना चाहिये जो क्षुधाका विरोधी हो। जो क्षुधाका विरोधी नहीं होगा उससे क्षुधाका अभाव कभी सिद्ध नहिं होगा।) परंतु केवली भगवानमें क्षुधाका विरोधी कोई भी पदार्थ दिखाई नहीं देता। इसलिये क्षुधाका अभाव भी सिद्ध नहीं होता। कदाचित् कहो कि ज्ञानादिक गुण ही क्षुधाके विरोधी हैं तो फिर बतलाना चाहिये कि ज्ञानादिमात्रसे ही क्षुधाका विरोध है अथवा किन्हीं खास ज्ञानादि विशेष गुणोंसे क्षुधाका विरोध है? कदाचित् ज्ञानमात्रसे ही क्षुधाका विरोध कहो तो जिस प्रकार प्रकाशके बढनेसे अंधकारकी हानि होती जाती है उसी प्रकार उन गुणोंके बढनेसे क्षुधाकी भी हानि होनी चाहिये। परंतु बालक स्त्रियां गोपाल आदिके समूहोंमें ज्ञानकी हीनता होनेपर भी क्षुधाकी वृद्धि नहीं देखी जाती और फिर उन्हींके ज्ञानकी वृद्धि होनेपर क्षुधाकी हानि नहीं देखी जाती। इसलिये ज्ञानादिक मात्रगुण क्षुधाके विरोधी नहीं हैं। कदाचित् कहो कि केवली भगवानके ज्ञानादिक गुण बहुत बढ गये हैं इसलिये उन्हींके साथ क्षुधाका विरोध है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानके ज्ञानादिक गुणोंका और उनके साथ होनेवाले क्षुधाके विरोधका तो ज्ञानही हम लोगोंको नहीं हो सकता? केवली भगवानके ज्ञानादिक गुण क्षुधाके विरोधी हैं। इस बातको हम अर्वाचीन अर्थात् इस समयके लोग नहीं जान सकते क्योंकि केवली भगवानके ज्ञानादिक

गुण अतींद्रिय होते हैं। उनका ज्ञान हम लोगोंको इंद्रियोंके द्वारा कैसे हो सकता है। इसलिये विधि रूप हेतुसे क्षुधाके अभावकी सिद्धि किसी प्रकार नहिं हो सकती।

कदाचित् दूसरे निषेधरूप हेतुसे क्षुधाके अभावकी सिद्धि करना चाहो तो फिर बतलाना चाहिये कि वह निषेधरूप हेतु क्षुधाका कार्य है अथवा कारण है वा व्यापक है। यदि वह क्षुधाका कार्य है तो उससे क्षुधाको उत्पन्न करनेमें समर्थ जितने पूर्ण कारण हैं उन सबकी निवृत्ति—सबका अभाव होना चाहिये। केवल एक ही कारणका अभाव क्यों मानते हो क्योंकि कार्यके अभाव होनेपर भी कारणोंमें परस्पर कोई विरोध थोडे ही आता है अर्थात् कार्यके अभावसे भी कारण ज्योंके त्यों बने रहते हैं इसलिये यदि अभाव होगा तो सबका होगा, किसी एक का नहीं। कदाचित् उस निषेधरूप हेतुको क्षुधाका कारण कहो तो उस कारणके नाश होनेपर क्षुधारूप कार्य नष्ट होगा जैसे अग्निके नाश होनेपर धूमका नाश अवश्य होता है। इसलिये कारण हेतु भी क्षुधाके अभावको सिद्ध नहीं कर सकता।

कदाचित् उस निषेधरूप हेतुको क्षुधाका व्यापक मानो तो व्यापकका नाश होने पर व्याप्यका अभाव होता है जैसे वृक्षके नाश होनेपर सीसोंके वृक्षका भी अभाव हो जाता है परंतु केवली भगवानके न तो क्षुधाके कार्यका अभाव है? न क्षुधाके कारणोंका अभाव है और न क्षुधाके व्यापकोंका अभाव है? इन तीनोंमेंसे किसीका भी अभाव नहीं है। कदाचित् यह कहो कि घातिया कर्मोंके अभाव होनेसे ही क्षुधाका अभाव हो जाता है सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि क्षुधा न तो घातिया कर्मोंका कार्यरूप हो सकती है और न घातिया कर्मोंकी स्वभाव-रूप हो सकती है। दोनोंमेंसे किसी रूप होना भी संभव नहीं है। कदाचित् यह कहो कि क्षुधा

मोहनीय आदि चारों घातिया कर्मोंकी कार्यरूप है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आहार पर्याप्ति और वेदनीय कर्म ही क्षुधाके कारण हैं। यह बात पहले अच्छी तरह प्रतिपादन कर चुके हैं । कदाचित् क्षुधाको घातिया कर्मोंका स्वभाव कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि मोहादि कर्मोंके जो स्वभाव होते हैं वे उनकी विपक्षभूत भावनाओंसे नष्ट हो जाते हैं। क्षुधा तो विपक्षभूत भावनासे नष्ट नहीं होती इसलिये वह घातिया कर्मोंकी स्वभावरूप नहीं हो सकती। इसी बातको आगे दिखलाते हैं। जो जिसका स्वभाव होता है, वह उसका विपक्षभूत भावनासे नष्ट हो जाता है जैसे क्षमा आदि भावोंसे क्रोधादिक नष्ट हो जाते हैं आप लोग क्षुधाको मोहका स्वभावरूप मानते हैं परन्तु क्षुधाकी बाधाको दूर करनेके लिए शास्त्रोंमें मोहकी प्रतिकूल रहनेवाली भावनाओंका तो उपदेश नहीं दिया है। यदि क्षुधा मोहका स्वभावरूप होती तो वह उसकी प्रतिकूल भावनासे नष्ट हो जाती परंतु प्रतिकूल भावनासे नष्ट तो नहीं होती, इसलिए वह मोह स्वभाव भी नहीं है। दूसरी बात यह है कि क्षुधाकी बाधा शीत उष्णके समान न तो क्लेश उत्पन्न करनेवाली है और न ध्यान अध्ययनको नाश करनेवाली है। इसलिए जैसे शीत उष्ण मोह स्वभाव नहीं है उसीप्रकार क्षुधाकी बाधा भी मोहस्वभाव नहीं है । क्षुधा किसी हालतमें भी मोहस्वभाव नहीं है क्योंकि यदि क्षुधाको मोहस्वभाव माना जायगा तो क्षुधाकी वेदनाको भी मोहस्वभाव मानना चाहिये क्योंकि क्षुधा और क्षुधाकी वेदनामें कोई विशेषता वा अंतर नहीं है। परंतु वेदना तो मोह स्वभाव नहीं है (वेदनीय स्वभाव है) इसलिए क्षुधा भी मोहस्वभाव नहीं है। कदाचित् यह कहो कि यदि सर्वज्ञके वेदना स्वीकार करली जायगी तो उनके सर्वज्ञपने में विरोध आ जायगा जैसे हमारे तुम्हारे वेदना होनेसे सर्वज्ञपना नहीं है । तथा जिसप्रकार

हमारे तुम्हारे वेदनाका उदय होनेसे ज्ञान दर्शन आदि नष्ट हो जाते हैं उसीप्रकार क्षुधा वेदना का उदय होनेसे सर्वज्ञके ज्ञान दर्शन आदि गुणोंका नाश हो जाना चाहिये । परंतु यह सब कहना अखंड (पूर्ण) और प्रचंड ऐसे वचनरूपी बाजेका आडम्बरमात्र है अर्थात् प्रलापमात्र है, व्यर्थ है, क्योंकि जब ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि कर्मोंका नाश ही हो चुका है फिर क्षुधा के होने पर भी ज्ञान दर्शन आदि गुणोंका नाश किसप्रकार हो सकता है ? ज्ञानका नाश होना ज्ञानावरण कर्मके उदयके आधीन है । हमारे तुम्हारे तो ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि कर्मोंकी अधिकता है इसलिए ज्ञानके नाशकी अधिकता भी युक्ति संगत होती ही है परन्तु केवली भगवानके तो ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि घातिया कर्मोंका पूर्णरूप नाश हो जाता है इसलिए क्षुधाके मौजूद रहते हुए भी उनके ज्ञानादिका नाश नहीं हो सकता । क्योंकि अग्निका अभाव होनेपर ईंधनके रहते हुए भी धूप नहीं हो सकता । इसी तरह क्षुधाके रहते हुए भी केवली भगवानके ज्ञानादिका नाश नहीं हो सकता । यदि तुम लोग क्षुधाकी उत्पत्ति चारों घातिया कर्मोंसे मानोगे तो 'वेदनीये शेषाः' इस सूत्रके अनुसार क्षुधा पिपासा (भूख प्यास) आदि ग्यारह परीषह वेदनीयसे उत्पन्न होती हैं और वे 'एकादश जिने' इस सूत्रके अनुसार केवली भगवानके भी होती हैं इस आगमका विरोध हो जायगा ।

इसके सिवाय एक बात यह भी है कि केवली भगवान अधिकसे अधिक कुछ कम एक करोड पूर्व तक विहार करते हैं परंतु विना भोजनके इतने दिन तक उनके शरीरकी स्थिति किस प्रकार रह सकती है । कदाचित् यह कहो कि केवली भगवानमें अंनतवीर्यत्व गुण होनेसे विना भोजनके भी उनका शरीर इतने दिन तक टिक सकता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि

केवल अनंत वीर्यत्व गुणसे ही विना भोजनके भी केवलीका शरीर टिका रहेगा तो वह विना आयुके भी टिका रहना चाहिये और ऐसी हालतमें कभी भी शरीरका नाश नहीं होना चाहिये फिर मोक्षके लिए तो जलांजलि देना ही समझ लेना चाहिये । यदि शरीरकी स्थितिमें आयु कर्मकी अपेक्षा मानोगे तो फिर भोजनकी अपेक्षा भी माननी पडेगी क्योंकि शरीरकी स्थिति के लिए दोनों ही कारण समान हैं । यह शरीर दीपककी ज्वाला (लौ) के समान है अथवा मेघकी धाराके समान है । जिसप्रकार तेल घट जानेसे (नष्ट हो जानेसे) उसकी ज्वाला नहीं जल सकती । बादलोंके आए विना उसकी धारावर्षा नहीं पड सकती । उसीप्रकार भोजनके अभावमें यह शरीर भी कभी नहीं टिक सकता है । कदाचित् यह कहो कि भोजन सदोष होता है इसलिये अन्नपानादिका त्याग कराया जाता है और भगवानके कोई दोष होना नहीं चाहिए । उनके तो समस्त दोषोंका अभाव है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे भगवानके विराजमान होना, गमन करना आदि क्रियाओंका भी अभाव मानना पडेगा । जब भगवानके स्थानका त्याग है तो फिर उसके सम्बन्धसे विराजमान होने अथवा गमन करने आदिका त्याग हो ही जाता है । फिर ऐसी हालतमें वे धर्मोपदेश भी नहीं कर सकेंगे, मौन ही धारण किए रहेंगे इसलिए गमन करना विराजमान होना आदिके समान उनके भोजनका अभाव सिद्ध नहीं हो सकता ।

कदाचित् यह कहो कि केवलदर्शनके द्वारा वे मांस आदिको सदा देखते रहेंगे फिर उनके भोजनके अंतराय ही दूर कैसे हो सकेंगे । सो यह कहना भी बडी भारी मूर्खतासे भरा हुआ है क्योंकि इसमें अवधिज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानियोंके द्वारा व्यभिचार आता है । जिसप्रकार

तीनों लोकोंको देखनेवाले अवधिज्ञानियोंके और मनुष्य लोकको देखनेवाले मनःपर्यय ज्ञानियोंके भोजनका सद्भाव है उसीप्रकार केवली भगवानके भी भोजनका सद्भाव है। रही अंतराय की वात, सो अंतराय इंद्रियोंके विषयमें ही होता है, अतींद्रिय विषयोंमें छद्मस्थ अवस्थामें भी उनके अंतराय नहीं होता। क्योंकि जिसप्रकार केवलज्ञानी केवलज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखते हैं उसीप्रकार अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी छद्मस्थ अवस्थामें भी अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखते हैं। इसालिये अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानियोंके समान केवलज्ञानियोंके भी अंतराय नहीं हो सकता। इसप्रकार सिद्ध हुआ कि विहार और उपदेशके समान केवली भगवानके आहार ग्रहण करनेमें भी कोई दोष नहीं है।

उत्तर पक्ष।

परन्तु यह सब कहना कठोर कुयुक्तियोंसे भरा हुआ है क्योंकि वह युक्तिरूपी सूर्यके संबंधसे विल्कुल शून्य है इसी वातको आगे अच्छी तरह दिखलाते हैं—तुमने जो कवलाहार और सर्वज्ञपनेकी अविरोधता दिखलानेके लिए कवलाहार और सर्वज्ञपनेमें साक्षात् विरोध है अथवा परंपरासे विरोध है? इत्यादिरूपसे दूसरेके मतमें दोष दिखलाए हैं, उसमें यह प्रश्न होता है कि केवली भगवान जो कवलोंको (गस्सेरूप आहारको) ग्रहण करते हैं सो क्या वे उस भोजनके ग्रासोंका रस साक्षात् अनुभव करते हैं अथवा परंपरासे अनुभव करते हैं? यदि वे साक्षात् उस भोजनका अनुभव करते हैं तो रसना इंद्रियसे करते हैं अथवा अन्य किसीसे? यदि पहला पक्ष स्वीकार करो अर्थात् रसना इंद्रियसे उस भोजनका रस अनुभव करते हैं ऐसा

कहो तो फिर उसे मतिज्ञान मानना ही पडेगा । कदाचित् यह कहो कि केवली भगवानके भोजनकी इच्छा विल्कुल नहीं होती इसालिये यह मतिज्ञान उत्पन्न होनेका दोष नहीं आ सकता तो फिर अच्छी चालवाली सुन्दर स्त्रियोंके साथ समागम करनेपर भी ब्रह्मचर्यव्रतका घात नहीं होना चाहिए । क्योंकि इन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है इसलिये केवली भगवान रसना इंद्रिय के द्वारा भोजनके रसका साक्षात् अनुभव नहीं कर सकते । कदाचित् यह कहो कि केवलज्ञानके द्वारा वे भोजनके रसका अनुभव करते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि केवलज्ञानके द्वारा वे भोजनके रसका अनुभव करते हैं तो फिर समस्त संसारके जनसमूहोंके शरीरमें रहनेवाले आहारका अनुभव वे अपने केवलज्ञानके द्वारा क्यों नहीं कर सकते ? कदाचित् यह कहो कि अपने शरीररूपी घरमें रक्खे हुए आहारका ही वे अनुभव करते हैं, दूसरेके शरीरके आहारका नहीं । सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवान तो वीतराग हैं इसलिए उनके अपने पराएका विभाग हो ही नहीं सकता ?

कदाचित् यह कहो कि अंतराय कर्मके नाश होनेसे वे भोजन ग्रहण कर सकते हैं ? तो फिर समस्त संसारमें भरे हुए पिसे विना पिसे सब तरहके समस्त अन्नसे भी उनके पेटकी अग्नि किस प्रकार शांत हो जायगी ? जिसप्रकार कि वडवाग्नि कभी तृप्त नहीं होती । उसीप्रकार पेट की अग्नि भी कभी तृप्त नहीं होनी चाहिए । क्योंकि भोजनको निवारण करनेवाले, रोकनेवाले अंतराय कर्मका तो सर्वथा अभाव है ही । दूसरी वात यह है कि जब यह नियम हो गया कि जहां २ अंतराय कर्मका नाश है वहां २ आहार ग्रहण करनेकी शक्ति है तो फिर अयोगी केवली में व्यभिचार आवेगा क्योंकि अयोगी केवलीके अंतराय कर्मका तो सर्वथा अभाव है परन्तु

आहार नहीं है। कदाचित् अयोगी केवलीके भी आहार मानो तो बन नहीं सकता क्योंकि "केवलिणो समुघादो अयोगो य सिद्धाय अणाहारेति" अर्थात् समुद्घातगत केवली अयोगी केवली और सिद्ध अनाहार रहते हैं। इनके आहार नहीं है इस आगमका विरोध आवेगा। इसलिए मानना चाहिए—भोजनके ग्रहण करनेमें अंतराय कर्मका नाश होना कारण नहीं है और न केवली भगवान आहार ग्रहण करते हैं।

इसके आगे तुमने यह जो कहा था कि केवली भगवान क्या संपूर्ण निर्मल केवलदर्शन केवलज्ञानके भाग जानेके डरसे भोजन नहीं करते हैं? इत्यादि रीतिसे हमारे मतमें दोष दिखलाया था और अपने मतकी शोभा बढायी थी परन्तु इसमें प्रश्न यह होता है कि केवली भगवान भोजन करते ही क्यों हैं? क्या शरीरकी वृद्धिके लिए भोजन करते हैं अथवा ज्ञान दर्शन वीर्य आदि गुणोंके नाशको रोकनेके लिए भोजन करते हैं। क्षुधाकी वेदनाको दूर करनेकेलिए भोजन करते हैं अथवा अभी तक मोक्ष सिद्ध नहीं हुई है इसलिए आयुके क्षयको रोकनेकेलिए भोजन करते हैं? रसोंकी लोलुपताको शांत करनेके लिए भोजन करते हैं, अथवा संसारका उपकार करनेके लिए भोजन करते हैं? अथवा ज्ञान, ध्यान, संयम आदिकी सिद्धिके लिए भोजन करते हैं? किसलिए भोजन करते हैं? कदाचित् कहो कि शरीरकी वृद्धिकेलिए भोजन करते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानके लाभांतराय कर्मका तो सर्वथा अभाव ही है इसलिए उनके शरीरकी वृद्धिको निमित्त कारणरूप दिव्य परमाणु प्रत्येक समयमें आते रहते हैं। इसीसे उनके शरीरकी वृद्धिकी सिद्धि हो ही जाती है फिर भला आहार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि शरीरकी वृद्धिके लिए ही यदि वे भोजन ग्रहण

करेंगे तो फिर वे निर्ग्रंथ किसप्रकार कहलायेंगे क्योंकि केवल शरीरकी वृद्धिके लिए आहार ग्रहण करनेके कारण साधारण पुरुषोंके समान शरीरकी मूर्च्छासे वे भी घिरे हुए हैं । इसलिए केवल शरीरकी वृद्धिके लिए आहार ग्रहण करनेकी वात स्वीकार करना ठीक नहीं है इसीप्रकार ज्ञान दर्शन वीर्य आदि गुणोंके नाशको रोकनेके लिए भी भोजन ग्रहण करना नहीं बन सक्ता क्योंकि ज्ञान दर्शन वीर्य आदि गुणोंको विनाश करनेवालोंका सर्वथा अभाव है इसलिए उन गुणोंका नाश तो कभी हो ही नहीं सकता है ? ज्ञान दर्शन आदि गुणोंको नाश करनेमें कारण ज्ञानावरण आदि कर्मोंका क्षयोपशम है उस क्षयोपशमके होनेपर भोजन ग्रहण करते हुए भी उन गुणोंका नाश हो ही जाता है परंतु केवली भगवानके तो समस्त आवरण कर्मोंका नाश हो चुका है इसलिए उनके उन कर्मोंका क्षयोपशम हो नहीं सकता । ऐसी हालतमें उनके उन गुणों का नाश होनेकी शंका भी कैसे उत्पन्न हो सकती है जिससे कि वे भोजन ग्रहण करते हैं । इस लिए ज्ञानादि गुणोंके नाशको रोकनेके लिए भी भोजन ग्रहण करना बन नहीं सकता । कदाचित् तीसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् क्षुधाकी वेदनाको दूर करनेके लिए भोजन करते हैं, यह कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानके अनंत सुख और अनंतवीर्यगुण विद्यमान है फिर भला उनके क्षुधाकी वेदनाकी संभावना ही कैसे हो सकती है ? उसका तो उनके सर्वथा अभाव है । इस वातको आगे चलकर बहुत अच्छी तरहसे दिखलावेंगे । इसी प्रकार चतुर पुरुषोंको चौथा पक्ष स्वीकार करना अर्थात् अभीतक मोक्षकी सिद्धि नहीं हुई है इसलिए आयुके क्षयको रोकनेके लिए भोजन करते हैं यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि जो उत्तम संहननवाले चरमशरीरी हैं उनकी आयुका घात कभी होता ही नहीं है फिर भला तीर्थंकर

होकर अरहंत पदको प्राप्त करनेवाले भगवानके आयुका घात किस प्रकार हो सकता है ? " औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः " अर्थात् " देव, नारकी, उत्तम शरीरको धारण करनेवाले चरमशरीरी और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिया इनकी आयुका घात नहीं होता है " ऐसा आगममें लिखा है। इसलिए इस हेतुसे भी भोजन करना ठीक नहीं बनता है। पांचवां पक्ष अर्थात् रसोंकी लोलुपताको शांत करनेके लिए भोजन करते हैं। यह स्वीकार करो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानके मोहनीय कर्म सब नष्ट हो गया है इसलिए उनके रसोंकी लोलुपता बन ही नहीं सकती है। इसी तरह छट्ठा पक्ष अर्थात् संसारका उपकार करनेके लिए भोजनका करना भी नहीं बनता है क्योंकि भगवानके संपूर्ण अंतराय कर्मके नाश होनेसे अनंतवीर्य प्रगट हो गया है इसलिए वे विना भोजन किए भी संसार का उपकार कर सकते हैं। इसालिये इन हेतुओंसे भी भोजनकी सिद्धि नहीं हो सकती। कदाचित् सातवां पक्ष स्वीकार करो अर्थात् ज्ञान ध्यान संयमकी सिद्धिके लिए भोजन करते हैं यह कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानका ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानता है तथा वह कभी नाश नहीं हो सकता। इसीतरह संयम भी उनके यथाख्यात है, वास्तविक है, फिर उसकी सिद्धि करना कुछ वाकी नहीं है तथा ध्यान उनके निश्चल रीतिसे तो कुछ ठहर ही नहीं सकता क्योंकि योगोंके निरोध करनेको ध्यान कहते हैं और वह योगोंका निरोध केवली भगवानके उपचारसे होता है जैसे लेश्याओंका सद्भाव उपचारसे होता है। ऐसा शास्त्रोंमें प्रतिपादन किया है। लिखा भी है " णवलाउसादु अट्ठं ण सरीरस्सयट्ठते यट्ठं । णाणट्ठसंयमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति ॥ इति " अर्थात् बल, आयु, स्वादोंके लिए, शरीरकी स्थितिके लिए तथा

ज्ञान संयम और ध्यानकी सिद्धिके लिए भोजन नहीं करते हैं। इसप्रकार सिद्ध हुआ कि केवली भगवान रसोंका अनुभव साक्षात् नहीं कर सकते।

कदाचित् यह कहो कि केवली भगवान परंपरासे रसोंका अनुभव करते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे शोकके साथ कहना पडेगा कि जब वे परंपरासे ही रसोंका आस्वादन करते हैं तो फिर उनका केवलज्ञान नष्ट होगया ही समझिये। क्योंकि केवलज्ञानसे तो वे साक्षात् अनुभव कर सकते हैं फिर परंपरासे अनुभवकी संभावना कैसी? इसके आगे जो तुमने आहारके व्यापक आदिके साथ सर्वज्ञपनकी विरुद्धतामें दोष दिखलाते हुए कहा था कि यदि इन दोनोंका परस्पर परिहाररूप विरोध होगा तो हमारे तुम्हारे मतिज्ञानके साथ भी विरोध होना चाहिये इत्यादि सो भी मिथ्यात्वरूपी ज्वरका प्रलापमात्र है अर्थात् सब व्यर्थ है क्योंकि केवलज्ञान और कवलाहारका पूर्ण विरोध है। यह कुछ नियम नहीं है कि जो निर्मल केवलज्ञानका विरोधी हो वह मतिज्ञानके भी विरुद्ध हो। यदि यह नियम मान लिया जायगा तो फिर ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि कर्मोंका क्षयोपशम भी केवलज्ञानके विरुद्ध है इसलिये वह मतिज्ञानका भी विरोधी होना चाहिये। यदि उस क्षयोपशमको मतिज्ञानका विरोधी मान लोगे तो फिर मतिज्ञानको क्षायोपशमिक कैसे कह सकोगे? दूसरी बात यह है कि जो बडेके विरुद्ध होता है वह छोटेके विरुद्ध नहीं हो सकता यदि यह मान लिया जायगा कि जो बडेके विरुद्ध होता है वह छोटेके भी विरुद्ध होता है तो फिर बादलोंका समूह सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका विरोधी है वह दीपकका भी विरोधी होना चाहिये। इसीतरह यह नियम भी नहीं बन सकता कि जो छोटेका विरोधी हो वह बडेका भी विरोधी हो। यदि यह नियम भी मान लिया जायगा तो

केवलज्ञान कभी क्षायिक नहीं हो सकेगा क्योंकि, क्षायिकपना मतिज्ञानका विरोधी है इसलिये वह केवलज्ञानका भी विरोधी होना चाहिये और जब क्षायिकपना केवलज्ञानका विरोधी होगा तो अर्थात् सिद्ध है कि केवलज्ञान क्षायिकज्ञान नहीं होगा तथा दीपकको बुझा देनेवाला वायु सूर्य चंद्रमाका भी विरोधी हो जायगा। दूसरी बात यह है कि केवलीको कवलाहार ग्रहण करनेवाला मानलेनेसे उनके केवलज्ञानका विरोध हो जायगा। क्योंकि कवलाहार ग्रहण करनेवालेको सरागी मानना ही पडेगा। इसी बातको आगे सिद्ध कर दिखलाते हैं—जो कवलाहार ग्रहण करता है वह वीतराग नहीं हो सकता जैसे रास्तेमें चलनेवाला मनुष्य। केवली भगवान भी आपके मतमें कवलाहार ग्रहण करते हैं इसलिए वे भी वीतराग नहीं हो सकते। विचार करनेकी बात है कि कवलाहारका ग्रहण स्मृति और अभिलाषापूर्वक होता है तथा खानेवाला पुरुष अपनी लालसाके अनुसार कंठ और ओठ तक भर पेट खाता है तथा तृप्त होनेपर जब अरुचि हो जाती है तब उसे छोडता है। इसप्रकार इच्छासे भोजनमें प्रवृत्ति होती है और अरुचिसे उसकी निवृत्ति होती है जिस पुरुषके इच्छा और अरुचिपूर्वक भोजनमें प्रवृत्ति निवृत्ति है वह मोहरहित वीतराग कैसे हो सकता है तथा मोहरहित वा वीतराग होनेके विना वह आप्त ही किसप्रकार हो सकता है। इसप्रकार कवलाहार ग्रहण करनेसे न तो वह वीतराग ही हो सकता है और न केवली आप्त ही हो सकता है कदाचित् यह कहो कि मोहके अभाव होने पर भी वीतराग होनेपर भी वे भोजन करते हैं क्योंकि मोहरहित वा वीतराग होकर भोजन करना उनका एक अतिशय है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार तुम वीतराग हो कर भी भोजन करना एक अतिशय मानते हो उसीप्रकार भोजन न करना ही एक अतिशय क्यों

नहीं मान लेते ? क्योंकि भगवानमें तो अनंत गुण हैं। जिसप्रकार अनंत गुण होनेसे चारों दिशाओंमें चार मुख दिखना एक अतिशय है उसीप्रकार भोजन न करना भी एक अतिशय मान लेना चाहिये। इसप्रकार भी सर्वज्ञके भोजनकी सिद्धि नहीं होती।

इसके बाद जो यह कहा था कि विशेष शक्तिके होनेसे पेटरूपी गुफाके कोनेमें आहारका पटक लेना ही व्यापकता है और वह सर्वज्ञके बहुत अच्छी तरहसे सिद्ध होती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि पेटरूपी गुफाके कोनेमें आहारके पटक लेनेकी शक्ति होनेपर भी केवली भगवानके भोजन करना बन नहीं सकता है। यदि उस शक्तिके होते हुए भोजन करना मान लोगे तो पहिलेके समान सर्वज्ञको सरागी मानना पडेगा और उनके मतिज्ञान मानना पडेगा। दूसरी बात यह है कि केवली भगवान आहारको हाथसे उठाकर पेटरूपी गुफामें डालते हैं सो इच्छापूर्वक डालते हैं या विना इच्छाके ? यदि पहला पक्ष स्वीकार करोगे अर्थात् इच्छापूर्वक मानोगे तो फिर केवली भगवानके मोहनीयकी सत्ता भी माननी पड़ेगी क्योंकि इच्छा मोहनीय कर्मका कार्य है। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् आहारको विना इच्छाके ही पेटरूपी गुफामें पटक लेते हैं ऐसे कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि भगवानके इच्छा तो है ही नहीं फिर वह आहार मुंहको छोडकर किसी दूसरी जगह इधर उधर क्यों नहीं पटक लिया जाता। इसलिये कहना चाहिये कि सर्वज्ञके साथ आहारके व्यापकका भी पूर्ण विरोध है। इसके आगे जो यह कहा था कि आहारके बाह्य अभ्यंतर कारण भी सर्वज्ञके साथ विरुद्ध नहीं होते उसमें भी अन्न पान आदि बाह्य कारणकी अविरुद्धता दिखलाई थी सो भी विना विचारके कहा हुआ है क्योंकि सब विरोधरूपी दोषसे बाधित है यदि वे केवली भगवान कवलाहार

ग्रहण करेंगे तो शरीरमें रसोंकी वृद्धि होगी, रसोंकी वृद्धि होनेसे श्लेष्मा (कफ) शूल, मल, मूत्र आदिकी उत्पत्ति होगी और कफ मल मूत्र आदिकी उत्पत्ति होनेसे मलिनता, ग्लानि, निद्रा तथा कामकी उत्पत्ति होगी फिर वे केवली संसारी ही क्यों नहीं हो जायंगे? फिर उनमें और हममें क्या विशेषता रहेगी? इसीप्रकार यदि सर्वज्ञका ज्ञान कवलाहारका विरोधी होगा तो हमारा तुम्हारा ज्ञान भी कवलाहारका विरोधी होना चाहिये इत्यादि कहा था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जाय तो आंखके पलक लगना, नख केश बढना आदि जो जो हम लोगोंके अविरुद्ध हैं वे सब भगवानमें होना चाहिये परन्तु केवल ज्ञान उत्पन्न होनेके बाद आंखोंके पलकोंका लगना, नख केश बढना आदि व्यापार तो होता नहीं है इसलिये मानना चाहिये कि जिनका विरोध केवली भगवानके होता है उनका विरोध हम तुम लोगोंके साथ भी हो ऐसा कुछ नियम नहीं है।

कदाचित् यह कहो कि आंखोंके पलकोंका न लगना तथा नख केश आदिका न बढना आदि देवोंका किया हुआ है इसलिए नख केशकी वृद्धि न होने आदिके समान केवली भगवानके भोजनका अभाव नहीं हो सकता। तीर्थंकर भगवान जिससमय केश लोंच करते हैं उसके बाद इंद्र उनके नख केशोंमें अपना वज्र घुमता है इसीलिए भगवानके नख केश आदि नहीं बढते हैं परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि वज्रके प्रभावसे ही नख केशकी वृद्धिका अभाव माना जायगा तो फिर उसी वज्रके प्रभावसे उन नख केशोंके जडमेंसे उत्पन्न होनेका भी अभाव मानना पडेगा और फिर ऐसी हालतमें समस्त तीर्थंकरोंके एकसे नख केश होनेका विश्वास करना पडेगा। परन्तु ऐसा है तो नहीं क्योंकि वृषभदेव आदि तीर्थंकरोंके

केशोंका समूह छोटा बडा भी होता है और इसतरह उनके केशोंमें विलक्षणता भी पाई जाती है। इसलिए केवली भगवानके नख केशोंकी वृद्धिका अभाव वज्रके प्रभावसे नहीं होता है किंतु घातिया कर्मोंके नाश होनेके समय जिसके जितने बडे नख केश होते हैं उनके वे फिर उतने ही बडे रहते हैं न घटते हैं न बढते हैं । इसलिए सयोगी केवली अवस्थामें शरीरके रहते हुए भी जिसप्रकार घातिया कर्मोंके नाश होनेसे उत्पन्न हुआ नख केशकी वृद्धिका अभावरूप अतिशय मानते हो उसीप्रकार उनके भोजनका अभावरूप अतिशय भी मान लेना चाहिये क्योंकि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। यदि छद्मस्थावस्थाके समान केवली भगवानके भोजन करना स्वीकार करते हो तो फिर उसी छद्मस्थावस्थाके समान उनके नख केशोंकी वृद्धि मान लेनी चाहिये। यदि उन केवली भगवानके हम तुम लोगोंसे विलक्षण ऐसा नख केशोंकी वृद्धिका अभाव मानते हो तो फिर हम तुम लोगोंसे विलक्षण ऐसा भोजनका अभाव भी उनके मान लेना चाहिये। उसके आगे जो सूर्य और दीपकके प्रकाशके साथ अन्धकारके विरोधका उदाहरण दिखलाया था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जो राहु सूर्यके साथ विरोध रखता है उसी राहुको दीपकके साथ भी विरोध रखना चाहिये। परन्तु ऐसा होता तो नहीं है इसलिए यह उदाहरण भी ठीक नहीं है। इससे सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञके साथ खाने पीने योग्य सामग्रीका पूर्ण विरोध है।

इसके आगे जो यह कहा था—पात्र आदि भी सर्वज्ञके विरुद्ध नहीं है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि पात्र कौनसे लेते हो लाल पीले काले वा सब रंगोंसे बने हुए अनेक रंगके पात्र लेते हो अथवा पाणिपात्र लेते हो। यदि पहला पक्ष स्वीकार करो तो फिर केवली भगवानके निर्ग्रंथपनेका

विरोध आवेगा। क्योंकि "संमणा णिग्गंथा होदूण विहरंति' अर्थात् सयोग केवली निर्ग्रंथ होकर विहार करते हैं तुम्हारे यहांके कल्पसिद्धान्तका वाक्य है। इसलिए इन वर्तनोंका सद्भाव केवलीके मान नहीं सकते। कदाचित् उनके पाणिपात्र मानों तो तुमने दिगम्बरोंका फैला हुआ मत ही स्वीकार कर लिया फिर मूल्यरहित इन शल्योंकी अनेक कल्पनाओंके जालसे क्या लाभ है? कदाचित् यह कहो कि दिगम्बरोंका मत स्वीकार कर लेने पर भी केवलीके आहारका ग्रहण तो मानना ही पडेगा क्योंकि उसमें तो कोई वाधा नहीं आवेगी सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आहारके लिए घरोंमें गमन करनेसे ममत्व मानना पडेगा और ममत्व माननेसे उनके मोहनीय कर्म मानना पडेगा। इसलिए केवलीके आहार ग्रहण करनेकी संभावना कभी नहीं हो सकती।

इसके आगे जो—अन्य केवलियोंके उन पात्रोंके स्वरूप मात्रसे विरोध है अथवा उनमें रहनेवाली ममत्व बुद्धिसे विरोध है इस प्रकारका जो आपने आक्षेप किया है इसलिए इस विषयमें यह विचार करना चाहिये कि यदि पात्रोंका संग्रह किया जायगा तो उनके धोने, रक्षा करने, साथ ले चलने, ग्रहण करने, और वनाने आदिके द्वारा ममत्व बुद्धि उत्पन्न ही होगी। तथा उनकी चिंताके पराधीन रहनेसे हम तुम लोगोंके समान उन केवली भगवानको भी मोहसहित मानना ही पडेगा और जब उनको मोहसहित सरागी मानोगे तो उनके ज्ञानका भी नाश क्यों न हो जायगा? इसतरह सिद्ध होता है कि सर्वज्ञपनेके साथ पात्र आदिकोंका पूर्ण विरोध है।

अब कदाचित् यह कहो कि सर्वज्ञपनेके साथ शरीरका विरोध नहीं होता क्योंकि यदि भगवानके आहारका अभाव माना जायगा तो उनके शरीरका टिकना ही असंभव हो जायगा इसीको अनुमानद्वारा दिखलाते हैं—केवली भगवानके शरीरकी स्थिति आहारपूर्वक ही होती

है क्योंकि वह शरीरकी स्थिति है, जो जो शरीरकी स्थिति होती है वह सब आहारपूर्वक ही होती है जैसे हम तुम लोगोंके शरीरकी स्थिति आहारपूर्वक ही होती है। इत्यादि सो ठीक है परंतु इसमें प्रश्न यह है कि इस अनुमानसे केवल आहारमात्रकी सिद्धि करते हो अथवा कवलाहारकी सिद्धि करते हो। यदि आहारमात्रकी सिद्धि करते हो तो ठीक है। हम भी मानते हैं क्योंकि यद्यपि केवली भगवानके कवलाहारका अभाव है तथापि नोकर्म वर्गणाका आहार उनके मौजूद है। इसी बातको आगे दिखलाते हैं। आहार छह प्रकारका होता है।

"णोकम्म कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो, उज्झमणोविय कमसो आहारो छव्विहो णेयो॥
णोकम्मं तित्थयरे कम्मं णारेय माणसो अमरे, कवलाहारो णरपसु उज्झो पक्खीय इगि लेऊ ॥२॥

अर्थात्—" नोकर्म आहार, कर्म आहार, कवलाहार, लेपाहार, ओझाहार और मानासिक आहार इसप्रकार अनुक्रमसे ये छह प्रकारके आहार हैं। इनमेंसे नोकर्म वर्गणाओंका आहार तीर्थकरोंके होता है, कर्म वर्गणाओंका आहार नारकियोंके होता है, मानासिक आहार देवोंके होता है, कवलाहार मनुष्य और पशुओंके होता है, ओझाहार पक्षियोंके होता है और लेपाहार एकेंद्रियोंके होता है।" इत्यादि शास्त्रोंमें लिखा ही है। कदाचित् यह कहो कि कवलाहार ग्रहण करनेसे ही आहार समझा जाता है सो ठीक नहीं है क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जायगा तो एकेंद्रिय, अंडज, देव, नारकी और आहार ग्रहण न करनेवाले तिर्यंच मनुष्योंको भी निराहार मानना पडेगा। परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि—

'विग्गहगइमावण्णा केवलिणो समुहदो अयोगीय, सिद्धा य अणाहारा एसा आहारिणो जीवा॥'

अर्थात्—'विग्रह गतिमें प्राप्त हुए जीव, समुद्घातगत केवली, अयोग केवली और सिद्ध इतने

जीव तो अनाहार रहते हैं। बाकी सब जीव आहार ग्रहण करनेवाले हैं।' इत्यादि शास्त्रोंका वचन है। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् कवलाहारकी सिद्धि करो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि देवोंके शरीरकी स्थितिके द्वारा वह हेतु व्यभिचारी होता है। क्योंकि कवलाहारके विना भी देवोंके शरीरकी स्थिति रहती ही है। देवोंके वेदनीय कर्मका भी उदय है और क्षुधाका भी उदय है तथापि उनके कवलाहारका अभाव है। इसलिए कवलाहारकी सिद्धि भी नहीं हो सकती। कदाचित् यह कहो कि वेदनीय कर्मका उदय देवोंमें तो कवलाहारको सिद्ध नहीं कर सकता परन्तु वह केवली भगवानमें अवश्य सिद्ध कर देगा सो यह आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला कथन भी भगवान अरहंत देवके बडे भारी माहात्म्यको प्रगट करता है। क्योंकि जो वेदनीय कर्मका उदय विषयोंकी विषम वेदनासे तिरस्कृत हुए देवोंमें कवलाहारको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है वही वेदनीय कर्मका उदय भगवान अरहंतदेवमें कवलाहारको सिद्ध करनेमें समर्थ हो जायगा? (यह कितने भारी अज्ञानका माहात्म्य है।) अच्छा! वह वेदनीय कर्मका उदय केवली भगवानमें कवलाहारको सिद्ध कर सकता है। यह वात किस प्रकार जानी गई? केवल आपने स्वीकार कर ली इसलिए? अथवा किसी प्रमाणसे? यदि केवल स्वीकार कर लेनेसे ही यह वात मान ली गई तो अतिप्रसंगका दोष आवेगा क्योंकि केवल इसतरह मान लेनेसे सब मतवालोंके लिए अपने माने हुए इष्ट पदार्थोंसे भिन्न पदार्थोंकी सिद्धि हो जायगी तो भी अनिष्ट ही हुआ। कदाचित् किसी प्रमाणसे उसकी समर्थता सिद्ध करो तो बतलाना चाहिए कि वह कौनसा प्रमाण है, प्रत्यक्ष है, अनुमान है अथवा आगम है? यदि प्रत्यक्ष प्रमाण मानो तो वह इंद्रियजन्य है अथवा अतींद्रिय है। यदि इंद्रियजन्य मानो तो ठीक नहीं है। क्योंकि

सर्वज्ञके आहार नीहार आदि किसीके इंद्रियगोचर होते ही नहीं हैं। ऐसा तुम्हीं लोगोंने स्वीकार किया है। " आहारा य णिहारा केवलिणो पच्छण्णा " अर्थात् केवलियोंके आहार और नीहार दोनों ही प्रच्छन्न होते हैं किसीको दिखते नहीं। ऐसा शास्त्रोंमें लिखा हुआ है। यदि अतींद्रिय प्रत्यक्ष मानों सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अतींद्रिय प्रत्यक्ष दिव्य है। हम तुम लोगोंको उसका ज्ञान नहीं हो सकता। यदि अनुमान प्रमाणसे उसकी सामर्थ्य मानो तो उसमें हेतु बतलाना चाहिए। क्या वेदनीय कर्मका उदय हेतु है? मनुष्यपना हेतु है अथवा शरीरका टिकना हेतु है? वेदनीय कर्मका उदय हेतु हो नहीं सकता क्योंकि वह देवों आदिके द्वारा व्यभिचारी है ऐसा पहले निरूपण कर चुके हैं। कदाचित् मनुष्यपना हेतु कहो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अयोगी केवलीके द्वारा व्यभिचार आता है अर्थात् अयोगी केवलियोंमें मनुष्यपना तो है परंतु उनका वेदनीय कर्मका उदय आहार ग्रहण करानेमें समर्थ नहीं होता। कदाचित् यह कहो कि अयोगी केवलीके मनुष्य स्वभावका अतिक्रमण हो गया है। मनुष्यस्वभाव रहा नहीं है इसलिए यह हेतु व्यभिचारी नहीं है तो फिर ठीक है इससे तो हमारा ही अभिप्राय सिद्ध होता है क्योंकि अयोगी केवलियोंके समान केवलियोंमें भी मनुष्यस्वभावका अतिक्रमण हो गया है। उनके मनुष्यस्वभाव नष्ट हो गया है वे देवोंमें भी देवोंके समान जान पडते हैं ऐसा शास्त्रोंका वचन है। इससे सिद्ध हुआ कि मनुष्यपना हेतु भी ठीक नहीं है।

इसीप्रकार शरीरका टिकना भी ठीक हेतु नहीं है क्योंकि देवोंके द्वारा व्यभिचार आता है यह बात पहले निरूपण कर चुके हैं। (उनका शरीर भी विना कवलाहारके बहुत दिनं तक टिका रहता है) कदाचित् यह कहो कि शरीरके टिकनेसे औदारिक शरीरके टिकनेका अभि-

प्राय है, जो जो औदारिक शरीरकी स्थिति है वह सब कवलाहारपूर्वक ही होती है जैसे हम तुम लोगोंका शरीर। भगवानका शरीर भी औदारिक है इसलिए देवोंके शरीरकी स्थितिके द्वारा उसमें व्यभिचार दोष नहीं आता सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानका शरीर औदारिक शरीर नहीं है किंतु परमौदारिक शरीर है और इसीलिए वह हमारे तुम्हारे औदारिक शरीरसे विल्कुल विलक्षण है। इसलिए उसकी स्थिति भी हमारे तुम्हारे शरीरसे विल्कुल विलक्षण है। लिखा भी है "शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः। जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम्॥" अर्थात्—"जिनके समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं ऐसे केवली भगवानका शरीर सात धातुओंसे रहित, शुद्धस्फटिकके समान निर्मल और तेजकी साक्षात् मूर्ति स्वरूप हो जाता है।" इसलिए केवलज्ञानावस्थामें जिसप्रकार नख केशोंकी वृद्धिका अभाव माना जाता है उसीप्रकार भोजनका अभाव माननेमें भी कोई विरोध नहीं आता है और फिर औदारिक शरीर कवलाहार ग्रहण करता ही है ऐसा कहनेवालोंके मतमें उनका प्रत्यक्ष अतींद्रिय किस प्रकार हो सकेगा क्योंकि तीर्थंकरोंका प्रत्यक्ष भी इंद्रियजन्य होता है क्योंकि वह प्रत्यक्ष है जो जो प्रत्यक्ष होते हैं वे सब इंद्रियजन्य होते हैं जैसे स्वाभाविक हमारा तुम्हारा प्रत्यक्ष, इसप्रकार भी बहुत अच्छी तरहसे कहा जा सकता है। तथा ऐसा कहनेसे मीमांसक मतका प्रवेश दुर्निवार हो जायगा अर्थात् वह मीमांसकका ही मत हो जायगा। क्योंकि जिस जातिके प्रमाणसे जिस जातिके पदार्थोंकी कल्पना इससमय लोकमें देखी जाती है वह कालांतरमें भी वैसी ही बनी रहती है उसमें किसी प्रकारकी रद्द वदल नहीं होती ऐसा मीमांसकोंका कहना है उसीके अनुसार केवलीके शरीरमें भी कोई अंतर नहीं पडना चाहिए वह वैसाका वैसा ही बना रहना

चाहिये और इस हिसाबसे वे हमारे तुम्हारे समान सरागी भी होने चाहिए क्योंकि हमारे तुम्हारे समान उनमें वक्तृत्व शक्ति है तथा हमारे तुम्हारे ही समान उनके हाथ पैर हैं इसलिए जैसे हम तुम सरागी हैं इसीप्रकार वे भी सरागी होने चाहिए। कदाचित् यह कहो कि जो स्वभाव हम तुममें देखे जाते हैं उनमेंसे केवली भगवानके कोई तो सिद्ध हो सकते हैं और कोई नहीं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कहनेमें स्वेच्छाचारीका दोष आजायगा। ऐसा कहना किसी प्रमाणसे सिद्ध नही हो सकेगा। और फिर ऐसा माननेसे अर्थात् उनको सरागी और उनका ज्ञान इंद्रियजन्य माननेसे कोई सर्वज्ञ वीतराग सिद्ध ही नहीं हो सकेगा। फिर भोजनकी सिद्धि किसके करोगे? कदाचित् यह कहो कि सब जगह शरीरकी स्थिति भोजनपूर्वक ही रहती है विना भोजनके शरीरकी स्थिति नहीं रहती इसलिए केवली भगवानके शरीरकी स्थिति भी भोजनपूर्वक ही होनी चाहिए उनके शरीरकी स्थिति विना भोजनके कैसे रह सकेगी सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे जिसप्रकार वस्त्र, चटाई, गाडी, मुकुट आदि पदार्थोंमें एक तरहकी विशेष रचना देखी जाती है इसलिए ये पदार्थ भी किसी विशेष बुद्धिमानके बनाए सिद्ध होते हैं उसीप्रकार हमारे शरीरमें भी विशेष रचना देखी जाती है इसलिए वह भी किसी का बनाया हुआ सिद्ध होना चाहिए। तथा किसी किसीको एक दीपकके दो दीपक दिखते हैं परंतु यह दो दीपकोंका ज्ञान निराधार है इसी तरह अर्थात् एक ज्ञान निराधार होनेसे संसारके समस्त ज्ञान निराधार होने चाहिए। कदाचित् यह कहो कि बुद्धिमानके द्वारा बनाई हुई विशेष रचना जैसी वस्त्र आदिकोंमें देखी जाती है वैसी विशेष रचना शरीरमें नहीं देखी जाती इस लिए वह शरीर किसीका बनाया हुआ नहीं है तो फिर यह भी कहना चाहिए कि हमारे तुम्हारे

औदारिक शरीरकी स्थिति जैसी भोजनपूर्वक देखी जाती है वैसी भोजनपूर्वक शरीरकी स्थिति परमौदारिककी नहीं देखी जाती इसलिए मानना चाहिए उस परमौदारिक शरीरकी स्थिति कवलाहारपूर्वक नहीं होती है। कदाचित् यह कहो कि सब ज्ञानोंमें ज्ञानकी विशेषता न होनेपर भी कोई ज्ञान निराधार होता है और कोई ज्ञान घट पट आदि पदार्थोंके आधारसे उत्पन्न होता है तो फिर यह भी मानना चाहिए कि भगवानके शरीरकी स्थितिमें और अन्य शरीरोंकी स्थितिमें कोई विशेषता न होनेपर भी भगवानका शरीर निराहार रहता है और अन्य सब शरीर आहार ग्रहण करते हैं क्योंकि ऊपरके माननेमें (ज्ञानको निराधार माननेमें) और इसके माननेमें कोई अंतर नहीं है दोनों ही समान हैं। कदाचित् यह कहो कि इस दिखते हुए शरीरसे विलक्षण अन्य कोई औदारिक शरीर नहीं है और इन दिखते हुए मनुष्योंसे विलक्षण अन्य कोई मनुष्य नहीं है तो फिर कहना पडेगा कि स्वेतांबरोंका मत ही मीमांसकों का मत बन जायगा। इसलिए मानना चाहिए कि जिस प्रकार अनेक तरहके मनुष्य होते हैं उसीप्रकार शरीरकी स्थिति वा शरीरका टिकाव भी अनेक तरहका होता है। यदि शरीरकी स्थिति अनेक तरहकी न हो तो केवली भगवानका शरीर सात धातुओंसे रहित तथा मलमूत्र से रहित कैसे होना चाहिए? यदि केवली भगवानके शरीरकी संभावना सात धातुओंसे रहित तथा मलमूत्रसे रहित हो सकती है तो फिर उस शरीरकी स्थिति भी विना भोजनके क्यों नहीं हो सकती? दूसरी बात यह है कि जिसप्रकार तपश्चरणके आतिशयसे भगवानके चारो दिशा-ओंमें चार मुखोंका दिखना मानते हो उसीप्रकार विना भोजनके भी उनके शरीरकी स्थिति मान लेनेमें कोई दोष नहीं है। संसारमें देखा भी जाता है कि चार बार भोजन करनेवालोंके

शरीरकी जैसी स्थिति रहती है वैसी शरीरकी स्थिति भोजनसे विरक्त रहनेवाले प्रतिपक्ष भावनाओंका चिंतवन करनेवालोंके तीन बार दोबार अथवा एकबार भोजन करनेसे भी रहती है। तथा जिसप्रकार प्रतिदिन भोजन करनेवालोंके शरीरकी स्थिति रहती है उसीप्रकार एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन बाद भोजन करनेवालोंके भी शरीरकी स्थिति रहती है । शास्त्रोंमें सुनते हैं कि एक वर्ष तक भोजन न करनेपर भी कमलके समान कोमल और निर्मल अतुल्य बलको धारण करनेवाले बाहुवलि आदि मुनियोंके शरीरकी स्थिति बहुत अच्छी बनी रही थी। इससे सिद्ध होता है कि शरीरकी स्थितिका मुख्य कारण आयु कर्म है। भोजनादिक तो केवल सहायकमात्र है। कदाचित् यह कहो कि भोजन न करनेसे केवली भगवानके शरीरकी स्थिति रह कैसे सकेगी तो इसका उत्तर यह है कि केवली भगवानके लाभांतराय कर्मका नाश हो गया है इसलिए उनके शरीरकी वृद्धिके कारण ऐसे विशेष परमाणु प्रत्येक समयमें आते रहते हैं उन्हींसे उनके शरीरकी स्थिति बनी रहती है। यदि छद्मस्थ अवस्थाके समान केवलज्ञान अवस्थामें भी भगवान भोजन करते हैं तो फिर जिसप्रकार छद्मस्थावस्थामें आंखोंके पलक लगते थे और नख केशोंकी वृद्धि होती थी उसीप्रकार केवलज्ञान अवस्थामें भी उनके नेत्रोंके पलकोंका लगना और नख केशोंकी वृद्धि होना मान लेना चाहिए । यदि केवलज्ञानावस्थामें नेत्रोंके पलकोंके लगनेका और नख केशोंकी वृद्धिका अभाव मानते हो तो फिर उसी केवलज्ञानावस्थामें उनके भोजनका भी अभाव मान लेना चाहिए। क्योंकि दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है। दोनों एकसे हैं। कदाचित् यह कहो कि विना भोजन किए एक महीने तक अथवा एक वर्ष तक शरीरकी स्थिति रह सकती है परन्तु विना भोजन किए शरीरकी स्थिति मरण-

पर्यंत नहीं रह सकती क्योंकि एक महीने बाद अथवा एक वर्ष वाद भी उन लोगोंकी (महीने अथवा वर्ष दिन तक निराहार रहनेवालोंकी) भोजनमें प्रवृत्ति देखी जाती है। परन्तु इसमें प्रश्न यह होता है कि विना भोजन किए मरणपर्यंत उनके शरीरकी स्थितिका अविश्वास कैसे हुआ ? प्रत्यक्षसे ? अथवा अनुमानसे ? यदि उनके शरीरकी स्थितिका अविश्वास प्रत्यक्षसे हुआ तो फिर कहना चाहिए कि तुमने सर्वज्ञदेवको जलांजलि दे दी क्योंकि जिसप्रकार विना भोजनके उनके शरीरकी स्थितिका भी विश्वास नहीं तो फिर उन सर्वज्ञका ही विश्वास कैसे हो सकेगा। क्योंकि सर्वज्ञके शरीरकी स्थिति सर्वज्ञसे भिन्न नहीं है। सर्वज्ञ और सर्वज्ञके शरीरकी स्थिति दोनों अभिन्न हैं इसलिए उनके शरीरकी स्थितिके अविश्वाससे उनका भी अविश्वास मानना ही पडेगा। कदाचित् भोजनके अभावमें सर्वज्ञके शरीरकी स्थितिका अविश्वास वा अभाव अनुमानसे मानो तो भी उसी हेतुसे सर्वज्ञका अभाव मानना पडेगा क्योंकि ऊपरके समान उन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जिसप्रकार ज्ञानमें हीनाधिकता होती है और उसी हीनाधिकतासे कहीं पर उस ज्ञानकी सर्वोत्कृष्ट उत्कृष्टता माननी पडती है इसीतरह दोष और आवरण कर्मोंकी हानि भी देखी ही जाती है इसलिए कहींपर उस दोष और आवरण कर्मोंकी सर्वोत्कृष्ट उत्कृष्टता भी माननी ही पडती है क्योंकि किसी परिमाणमें जिसप्रकार हानि वृद्धि होते २ सबसे अधिकता और सबसे हीनता (अभाव) देख पडती है उसीप्रकार दोष और आवरणोंकी हानि होते २ उसका अभाव भी दिखाई पडता ही है। इसीप्रकार एक दिन, दो दिन, एक महीना, दो महीना तीन महीना और एक वर्ष वाद भोजन करनेवालोंके जब उतने दिनतक विना भोजनके उनके शरीरकी स्थिति बनी रहती है तो फिर कहींपर उस भोजनके अभावकी सर्वोत्कृष्टता भी होनी

ही चाहिए क्योंकि किसी परिमाणके समान उसमें भी भोजनकी हीनता बढती ही जाती है। इसलिए हीन होते २ कहीं न कहीं तो उसका सर्वथा अभाव होना ही चाहिए जैसे दोषावरणों का अभाव हो जाता है। दोषावरण और भोजनमें कोई अंतर नहीं है। इसलिए जैसे कहींपर दोषावरणका अभाव हो जाता है उसीप्रकार कहीं न कहीं भोजनका अभाव होना ही चाहिए इसतरह केवली भगवानके कवलाहारका सर्वथा अभाव मानना ही पडता है।

अब अंतरंग कारणोंका विचार करते हैं। अंतरंग कारणोंमें कदाचित् भोजनका कारण तैजस शरीरको मानो सो ठीक नहीं है क्योंकि तैजस शरीरको भोजनका कारण तुमने भी नहीं माना है यदि तैजस शरीरको कवलाहार भोजनका कारण मानोगे तो समस्त देव, अयोगि-केवली और एकेंद्रिय जीवोंके भी कवलाहार होना चाहिए क्योंकि उनके भी तैजस शरीर मौजूद है परन्तु होता तो नहीं है इसलिये केवलियोंके भी नहीं होता है क्योंकि तैजस शरीर उसका कारण ही नहीं है। कदाचित् यह कहो कि घातिया अघातिया कर्मोंमेंसे सात कर्म तो भोजनके कारण वा अकारण हो ही नहीं सकते हैं क्योंकि उनको कारण अकारण माननेके लिये तो विचार करनेकी जगह ही नहीं है। हां! वेदनीय कर्मके होनेसे भूखकी इच्छा होती है जहांपर जो कर्म होता है वहांपर वही कर्म फल देता है, जैसे आयु कर्म। इसीप्रकार केवली भगवानके वेदनीय कर्म मौजूद है इसलिए वह उनको अपना फल अवश्य देगा अर्थात् उनके भूखकी इच्छा अवश्य होगी। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इस अनुमानसे केवल यही सिद्ध होता है कि वेदनीय कर्म अपना फल देता है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि भगवानके भूख लगती ही है। कदाचित् यह कहो कि खानेकी इच्छा होनेका कारण वेदनीय कर्मका अस्तित्व होनेसे

आहारकी सिद्धि अपने आप हो जाती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेमें प्रश्न यह होता है कि भगवानके खानेकी इच्छाका कारण वेदनीय कर्म ही है। यह कैसे जाना गया? कदाचित् यह कहो कि भूख लगनेरूप उसके कार्यसे जाना गया तो फिर अन्योन्याश्रय दोष आजायगा। क्योंकि केवली भगवानके भोजनकी इच्छाके कारणरूप कर्मकी सिद्धि होनेपर उसके बहुतसे फलकी सिद्धि हो सकती है और भोजनकी इच्छारूप फलकी सिद्धि होनेपर उसके कारणरूप कर्मोंकी सिद्धि हो सकती है। इसप्रकार अन्योन्याश्रय दोष होनेसे दोनोंकी सिद्धि नहीं हो सकती।

कदाचित् यह कहो कि भगवानके असाता वेदनीय कर्मका उदय है इसलिए उनके भोजनकी सिद्धि सिद्ध होती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उस असाता वेदनीयके उदयमें कुछ सामर्थ्य नहीं है। मोहनीय कर्मकी सहायतासे ही वेदनीय आदि कर्म क्षुधा आदि अपने अपने कार्योंको करनेमें समर्थ होते हैं। विना मोहनीयकी सहायताके वे कुछ नहीं कर सकते। जिसप्रकार सेनापतिके मरनेपर सेनाके सामर्थ्य कुछ नहीं रहती उसीप्रकार मोहनीय कर्मके नाश होनेपर अघातिया कर्मोंकी सामर्थ्य कुछ नहीं रहती। अथवा कोई मंत्रवादी अपने मंत्रोंके द्वारा विषको निर्विष कर खावे तो वह विष न तो उसके प्राणोंको नष्ट कर सकता है और न उसे मूर्च्छित ही कर सकता है उसीप्रकार केवली भगवानके भी शुक्लध्यानरूपी अग्निसे मोहनीय कर्म नष्ट हो गया है इसलिए उनके वेदनीय आदि कर्म भी कुछ नहीं कर सकते हैं। उससे भोजनकी इच्छारूप कार्य कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि संपूर्ण कारणोंके मिलनेसे कार्योंकी उत्पत्ति होती है। किसी एक कारणसे नहीं। इसी बातको आगे दिखलाते हैं—केवली भगवानके भोजनकी इच्छा

कभी नहीं हो सकती क्योंकि भोजनकी इच्छाका कारण मोहनीय कर्म है और उसका उनके अभाव है, जहांपर जिसके कारणका अभाव होता है वहांपर वह कार्य कभी नहीं हो सक्ता जैसे जहां अग्नि नहीं है ऐसे सरोवर आदिमें धूम कभी उत्पन्न नहीं हो सकता उसीप्रकार अरहंत भगवानके भी मोहनीयकर्मका अभाव है इसलिये उनके भोजनकी इच्छा कभी नहीं हो सकती (कदाचित् यह कहो कि मोहनीयकर्मका अभाव होनेपर भी केवल वेदनीयकर्मका उदय अपना कार्य करता है सो ठीक नहीं है क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जायगा तो तीर्थंकरोंके परघात नाम कर्मके उदय होनेसे उन्हें लकडी अथवा थप्पड घूंसा आदिकी चोटसे दूसरे लोगोंको मारना भी चाहिए तथा स्वघात नाम कर्मके उदयसे उन्हें लकडी अथवा थप्पड घूंसा आदिकी चोटसे दूसरोंसे मार खानी चाहिए क्योंकि छठे गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक अर्थात् साधारण मुनिसे लेकर अरहंत अवस्थातक सब मुनियोंके स्वघात परघात नाम कर्मका उदय विद्यमान है ही। कदाचित् इस दोषको दूर करनेके लिए यह कहो कि भगवान अरहंतदेव परम कृपालु–दयालु हैं इसलिये वे दूसरोंको नहीं मारते तथा उनके उपसर्ग होता नहीं है इसलिए दूसरोंके द्वारा दी हुई चोट उनके लग नहीं सकती तो फिर वे अरहंतदेव बाधारहित हैं और अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य उनके विद्यमान हैं ऐसी हालतमें अकेले वेदनीय कर्मका उदय होनेपर भी वे भोजन किस प्रकार करते हैं ? यदि (वेदनीय आदि) कर्मोंका उदय विना किसीकी (मोहनीयकी) अपेक्षासे अपना कार्य कर लेगा तो फिर प्रमत्त अप्रमत्त अपूर्व करण आदि गुणस्थानोंमें स्त्री पुंनपुंसक वेदोंका उदय होनेसे मैथुन भी होना चाहिए तथा कषायोंका उदय होनेसे भ्रुकुटी चलाना क्रोध होना आदि कार्य भी होने चाहिए। तथा मैथुनके होनेसे वा भ्रुकुटी चलाना क्रोध करना आदि

कार्योंके होनेसे चित्तमें क्षोभ उत्पन्न हो जाना चाहिए और चित्तमें क्षोभ उत्पन्न होनेसे फिर शुक्लध्यान किसप्रकार हो सकेगा ? और वह क्षपकश्रेणी किसप्रकार चढ़ सकेगा ? तथा विना शुक्लध्यानके वा विना क्षपकश्रेणी चढे वह कर्मोंका नाश ही किसप्रकार कर सकेगा ? कदाचित् यह कहो कि विना मोहनीयकी सहायताके नाम आदि कर्म भी अपना कार्य किसप्रकार कर सकेंगे सो भी ठीक नहीं है क्योंकि शुभप्रकृतियां किसीकी अपेक्षा नहीं रखती इसलिए वे अपना कार्य करती हैं। जिसप्रकार कोई बलवान राजा हो वह दुष्टोंका निग्रह शिष्टोंका पालन करना आदि अपने कार्योंको बराबर करता हो और वह किसी देशको जीत ले तो फिर उस देशमें दुष्ट लोग जीवित रहते हुए भी अपना दुष्ट आचरण नहीं कर सकते क्योंकि उस राजासे उन की सामर्थ्य मारी जाती है परंतु सज्जन लोग तो अपना कार्य करते ही रहते हैं क्योंकि उनकी सामर्थ्य मारी नहीं जाती इसीप्रकार शुभ अशुभ प्रकृतियोंका हाल भी समझ लेना चाहिए। कदाचित् यह कहो कि अरहंत भगवानमें जब अशुभ प्रकृतियोंकी सामर्थ्य मारी जाती है तो फिर शुभ प्रकृतियोंकी सामर्थ्य भी क्यों नहीं मारी जाती तो इसका उत्तर यह है कि भगवान अर-हंतदेव अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग नष्ट कर देते हैं परंतु वे शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग नष्ट नहीं करते। इसका भी कारण यह है कि गुणोंके घात करनेवालोंको ही दंड दिया जाता है निर्दोषोंका कोई दंड नहीं देता) सामर्थ्य रहित असाता वेदनीय कर्म भी अपना कार्य कर लेगा तो फिर अरहंत भगवान जो दंड कवाट प्रतर पूर्णरूप समुद्घात करते हैं वह सब व्यर्थ हो जायगा क्योंकि जब आयु कर्म थोडी रह जाता है और वेदनीय आदि कर्मोंकी स्थिति अधिक रहजाती

१ यह कोष्ठकका पाठ प्रमेयकमलमार्तंडसे लिखा गया है ग्रंथकर्ताने यह ग्रन्थ प्रायः उसीके आधारसे लिखा है ।

है तब उस समुद्घातके द्वारा समस्त कर्मोंकी स्थिति समान करनेके लिए दंडकवाटिक किए जाते हैं। लिखा भी है—"मासाउग सेसेउपण्णं जेसि केवलं णाणं। ते णियमा समुघायं सेसेसु हवंति भजणिज्जा॥" अर्थात्—"जिनके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है ऐसे अरहंतके जब एक मासकी आयु रह जाती है तब अन्य कर्मोंकी समान स्थिति करनेकेलिए वे नियमसे समुद्घात करते हैं।" ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है परंतु अधिक स्थितिके द्वारा कर्म अपना फल देहींगे सेकडों उपायोंसे भी वे अन्यथा नहीं किए जा सकेंगे तो फिर इस हिसाबसे किसीको मोक्षकी प्राप्ति ही नहीं होनी चाहिए। कदाचित् यह कहो कि तपश्चरणके अतिशयसे जो कर्म निर्जराके सम्मुख हो गए हैं वे अधिक स्थितिके द्वारा भी फल नहीं दे सकते और वे ही कर्म आयुके समान स्थिति-वाले किए जाते हैं तो फिर यह भी कहना चाहिए कि वेदनीय कर्म भी अपना कुछ फल नहीं दे सकता क्योंकि उन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है। कदाचित् यह कहो कि अरहंत भगवानके वेदनीय कर्म है ही नहीं क्योंकि वह घातिया कर्मोंके समान कुछ फल ही नहीं देता है। इस हिसाबसे भगवान अरहंतदेवके पांच कर्मोंका अभाव मानना चाहिए परंतु इसका निराकरण ऊपर लिखे कथनसे ही हो जाता है। क्योंकि यदि आयु कर्मसे अधिक स्थितिवाले वेदनीय आदि कर्म अपना फल देते ही रहेंगे तो फिर मोक्षका अभाव मानना ही पडेगा। यदि वे अपना फल नहीं दे सकेंगे तो फिर वे कर्म नहीं कहला सकेंगे और जब वे कर्म ही नहीं कहला सकेंगे तो फिर उनको नाश करनेके लिए (उनकी स्थिति आयुके समान करनेके लिए) केवली भगवान का लोकपूरण आदि समुद्घात करनेका प्रयास ही व्यर्थ हो जायगा। कदाचित् यह कहो कि यद्यपि नाम गोत्र कर्मकी सामर्थ्य विशेष तपश्चरण आदि अनुष्ठानोंसे नष्ट हो गई है तथापि

उनमें कर्मत्व शक्ति समान रीतिसे रहती है तो फिर इसीप्रकार वेदनीय कर्ममें भी मान लेना चाहिये। यदि कारणके रहनेसे ही कार्यका अस्तित्व मानोगे तो फिर केवली भगवानके इंद्रियों का भी सद्भाव है इसलिये उनके मतिज्ञान और राग आदिक मान लेने चाहिये कदाचित् यह कहो कि आवरण (ज्ञानावरण दर्शनावरण) कर्मोंका क्षयोपशम मोहनीय कर्मका सहकारी है विना मोहनीयके आवरण कर्मोंका क्षयोपशम नहीं होता और केवली भगवानके उस मोहनीय क्षयोपशमका अभाव है इसीलिए वे नाम गोत्र कर्म अपना कार्य नहीं करते हैं तो फिर यह भी कहना चाहिए कि सहकारीरूप मोहनीय कर्मके अभावसे वेदनीय कर्म भी अपना कुछ कार्य नहीं कर सकता क्योंकि वेदनीय और नाम गोत्र कर्मोंमें इस विषयमें कुछ विशेषता नहीं है। यह नियम है कि अपने आत्मामें अथवा अन्य पदार्थोंमें जिसका मोह नष्ट होगया है वह अपने लिए अथवा अन्य लोगोंके लिए न तो कुछ ग्रहण करनेके लिए व्यापार करता है और न कुछ देनेके लिए छोडनेके लिये व्यापार करता है। इसी बातको आगे दिखलाते हैं। जिसविषयमें जिस का मोह अत्यंत नष्ट हो जाता है वह उसके लिए न तो कुछ ग्रहण करनेका व्यापार करता है और न ले-नेके—देनेके लिए व्यापार करता है। जिसप्रकार जिसके हृदयसे राग अत्यंत नष्ट
सी माता पुत्रकेलिए लेने देनेका कुछ व्यापार नहीं करती। केवली भगवानके भी नष्ट होगया है इसलिए केवली भगवान भी भोजन खानेके लिए अथवा क्षुधा
भी व्यापार नहीं करते हैं। यदि वे भोजन ग्रहण करने
...ो शांत करनेके लिए-कुछ व्यापार करें तो समझना
विद्यमान है। जो मनुष्य भोजन ग्रहण करनेके लिए तथा

क्षुधा वेदनाको शांत करनेके लिए व्यापार करता है वह रास्तेमें चलते हुए पुरुषके समान अवश्य ही मोहसहित माना जाता है। स्वेताम्बरोंके माने हुए भगवान भी भोजन ग्रहण करनेके लिये और क्षुधा वेदनीयको शांत करनेके लिए व्यापार करते हैं इसलिए वे भी अवश्य मोह-साहित हैं। इसप्रकार उन्हें मोहसाहित माननेसे उनमें हम तुम लोगोंके समान केवलीपना किस प्रकार सिद्ध होगा ? भावार्थ—उन्हें हम तुम लोगोंके समान अल्पज्ञानी ही मानना पडेगा। कदाचित् यह कहो कि भोजन करनेकी इच्छा उत्पन्न होना विना मोहनीयकी सहायताके केवल वेदनीयका कार्य है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि भोजन करनेकी इच्छा केवल वेदनीयका कार्य हो तो जिनका मोह अत्यंत नष्ट होगया है ऐसे जीवोंके भी वह भोजन करनेकी इच्छा होनी चाहिये परन्तु होती तो नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि वह केवल वेदनीयका कार्य नहीं है। इसके आगे जो तुमने यह कहा था कि यदि भूख लगनेकी इच्छामें मोह कारण है तो वह भूख लगनेकी इच्छारूप मोह कारण है अथवा सामान्य मोह कारण है यदि भूख लगनेकी इच्छारूप कारण मानते हो तो वह सर्वज्ञके लिये या हम तुम लोगोंके लिये ? यदि सर्वज्ञके लिये मानोगे तो इसमें कोई प्रमाण नहीं है इत्यादि सो भी बालकोंके कहनेके समान अज्ञानसे भरा हुआ जान पडता है क्योंकि यह सब कथन युक्ति और सद्वचनरूपी संपदासे रहित है। अरे भूख लगनेकी इच्छारूप मोह भगवानके है ही नहीं फिर उनके भोजनका अभाव अपने आप सिद्ध हो जाता है। जैसे सर्पके अंधेरे बिलमें प्रकाशका अभाव स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। कदाचित् हम तुम लोगोंके मानों सो ठीक ही है क्योंकि हम तुम लोगोंके भूखकी इच्छा भी है मोह भी है इसमें कोई आपत्ति नहीं है। इसके आगे जो "भोजनकी क्रिया इच्छापूर्वक होती है क्योंकि वह

चेतनकी क्रिया है आदि दिगम्बरियोंकी ओरसे कहा था सो भी ठीक नहीं हैं क्योंकि ऐसा हम मानते ही नहीं हैं। इसके आगे जो " यदि भोजनकी इच्छाके लिये सामान्य रीतिसे मोहको कारण मानोगे तो भगवानके गमन करने, ठहरने विराजमान होने आदिमें भी मोहको ही कारण मानना पडेगा " इत्यादि कहा था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि गमन करना, ठहरना विराजमान होना भगवानमें स्वभावसे ही नियत होते हैं. " ठाणणिसिज्जाविहारो धम्मुवदेसो य णियदओ तेसिं। अरहंताणं काले मायाचारोव्व इत्थीणं " अर्थात्—" जिसप्रकार स्त्रियोंमें मायाचार स्वाभाविक नियत रहता है उसी प्रकार अरहंत भगवानमें अपने अपने समयके अनुसार ठहरना विराजमान होना विहार करना धर्मोपदेश देना आदि स्वाभाविक रीतिसे नियत रहते हैं। " ऐसा सिद्धांतका वचन है। जहां जहां गति (गमन करना) स्थिति (ठहरना) आदि क्रियाएं होती हैं वहां मोहनीय कर्मके उदयसे ही होती हों यह कुछ नियम नहीं है क्योंकि गति स्थिति आदि तो बिजलीमें भी होती है परंतु वहां मोहनीय कर्मका उदय कारण नहीं है और भोजनकी इच्छा तो मोहनीयके साथ ही होती है यह नियम है। इसी बातको आगे दिखलाते हैं। भोजनकी इच्छा विना मोहनीयके केवल वेदनीयका कार्य नहीं है क्योंकि वह इच्छा है। जो जो इच्छाएं होती हैं वे सब मोहनीयकी ही कार्यरूप होती हैं जैसे स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा। यदि बुभुक्षा अर्थात् भोजन करनेकी इच्छा केवल वेदनीयका कार्य समझी जायगी तो रिरंसा अर्थात् जघन स्तन योनि आदिमें रमण करनेका इच्छा भी केवल वेदनीयका कार्य समझी जायगी। और यदि योनि आदिमें रमण करनेकी इच्छा केवल वेदनीयका कार्य समझी जायगी तो जिसप्रकार अरहंत भगवानमें (केवल वेदनीयका कार्यरूप होनेसे) भोजनकी

इच्छा है उसीप्रकार उनमें केवल वेदनीयका कार्यरूप होनेसे योनि आदिमें रमण करनेकी इच्छा भी होनी चाहिए। क्योंकि तलवार और फरसाके समान इन दोनोंमें कोई अधिक अंतर नहीं है।

कदाचित् यह कहो कि रमण करनेकी इच्छा प्रतिपक्ष भावनाओंसे नष्ट हो जाती है तो फिर भोजन करनेकी इच्छा भी प्रतिपक्ष भावनाओंसे नष्ट हो जानी चाहिए। क्योंकि जो जो इच्छाएं होती हैं वे सब प्रतिपक्ष भावनाओंसे नष्ट हो जाती हैं जैसें स्त्रीसेवन करनेकी इच्छा। भोजन करनेकी इच्छा भी एक इच्छा है इसलिए वह भी प्रतिपक्ष भावनासे अवश्य नष्ट हो जानी चाहिए। कदाचित् यह कहो कि प्रतिपक्ष भावनाके समय तो भोजनकी इच्छा नष्ट हो जाती है परन्तु जिस समय वह प्रतिपक्ष भावना नहीं होती उस समय उस भोजनकी इच्छाकी प्रवृत्ति हो जाती है तो फिर स्त्रीसेवनकी इच्छामें भी इसीकी समानता होनी चाहिए अर्थात् प्रतिपक्ष भावनाके समय वह नष्ट हो जानी चाहिए और जिस समय प्रतिपक्ष भावना न हो उस समय उसकी प्रवृत्ति होनी चाहिए। कदाचित् यह कहो कि केवली भगवान मनकी प्रतिपक्ष भावनामय हैं इसलिए उनके स्त्रीसेवनकी इच्छा विल्कुल नष्ट हो जाती है तो फिर भोजनकी इच्छामें यह वात क्यों नहीं होती है अर्थात् स्त्रीसेवनकी इच्छाके समान भोजनकी इच्छा भी विल्कुल नष्ट क्यों नहीं हो जाती? कदाचित् यह कहो कि भगवान मोहरहित हैं इसलिए उनके स्त्रीकी इच्छा विरुद्ध पडती है अर्थात् उनके स्त्रीकी इच्छा हो नहीं सकती तो फिर मोहरहित होनेसे भोजनकी इच्छा भी विरुद्ध होनी चाहिए अर्थात् स्त्रीकी इच्छाके समान वह भी नष्ट हो जानी चाहिए। इसी वातको आगे दिखलाते हैं। केवली भगवानके भूखकी इच्छाका सर्वथा अभाव

है क्योंकि वे भूखकी इच्छाके विरुद्ध निर्मोह स्वभावको प्राप्त हो गए हैं। जो जिसके विरुद्ध स्वभावको प्राप्त हो जाता है उसके उसका अभाव हो जाता है जैसे उष्ण स्वभावको प्राप्त हुए किसी देशमें शीतस्पर्शका सर्वथा अभाव हो जाता है। केवली भगवान भी भोजनकी इच्छाके विरुद्ध निर्मोह स्वभावको प्राप्त हो गए हैं इसलिए उनके भी भोजनकी इच्छाका सर्वथा अभाव हो गया है।

इसी कथनसे "यदि प्रतिपक्ष भावनाओंसे ही क्षुधाकी निवृत्ति हो जाती है तो क्षुधाकी वेदनाको दूर करनेके लिए शास्त्रोंमें भोजनकी इच्छाके लिए उसीका उपदेश क्यों नहीं दिया है" इत्यादि कथनका भी निराकरण समझ लेना चाहिए। क्योंकि पाहिले आहारकी शुद्धिका प्रतिपादन कर चुके हैं इसलिए मन प्रतिपक्षभावमय सिद्ध होता ही है। तथा मनके प्रतिपक्ष-भावमय सिद्ध होनेसे कामवेदनाकी निवृत्तिके समान समस्त वेदनाओंकी निवृत्ति सिद्ध हो ही जाती है। इसलिए भोजन करनेकी इच्छासे उस भूखकी वेदनाको दूर करनेके लिए किसी भी प्रयोजनकी आवश्यकता नहीं है। कदाचित् यह कहो कि क्षुधा आकांक्षारूप नहीं है इसालिये मोहरहित होनेपर भी केवली भगवानके उसका सद्भाव रहता है? तो फिर यह भी मानना चाहिए कि स्त्रीसेवनकी इच्छा भी आकांक्षारूप नहीं है इसालिये केवलीके उसका सद्भाव क्यों नहीं रह सकेगा? कदाचित् यह कहो कि स्त्रीसेवनकी इच्छा केवली भगवानके स्वरूपके विरुद्ध है तो फिर भोजन करनेकी इच्छा भी उनके स्वरूपके विरुद्ध है फिर भला वह भी उनके किस प्रकार रह सकेगी?। अथवा किसी तरहसे मान भी लिया जाय कि भोजनकी इच्छा केवली भगवानके विरुद्ध नहीं है तो भी वह भोजनकी इच्छा दुख स्वरूप तो है फिर भला वह

सुखको धारण करनेवाले केवली भगवानके संभव कैसे हो सकेगी ? जो जो दुख स्वरूप होते हैं वे केवली भगवानके नहीं हो सकते जैसे दुखस्वरूप स्त्रीसेवनकी इच्छा । भोजनकी इच्छा भी दुःखस्वरूप है इसलिए वह भी उनके नहीं हो सकती । जहां अनंत सुख होता है वहांपर दुखके एक अंशकी भी संभावना नहीं हो सक्ती जैसे सिद्ध भगवानमें अनंत सुख होनेसे दुखके एक अंशकी भी संभावना नहीं है उसीप्रकार अरहंतमें भी अनंत सुख होनेसे दुखके एक अंशकी संभावना नहीं हो सकती । कदाचित् यह कहो कि समस्त बाधाओंको नाश करने स्वरूप अनंत सुख जैसा सिद्धोंमें है वैसा अरहंतोंमें सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि उनके वेदना (भूखका दुख) मौजूद है । भगवानके वेदनीय कर्मका उदय है इसलिये समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले सिद्धोंके जैसा अनंत सुख है वैसा सुख केवली भगवानके नहीं हो सकता । परन्तु यह सब कहना भी सोते हुए मदोन्मत्त अथवा मूर्छित लोगोंके कहनेके समान है । क्योंकि केवली भगवानके वेदनीय कर्मका उदय भूखके दुःखका कारण नहीं है इस बातको पहिले अच्छी तरह निरूपण कर चुके हैं । इसलिए केवली भगवानके अनंत सुखमें वेदनीय कर्मका उदय कभी दुखस्वरूप संभव हो ही नहीं सकता है जैसे अमृतके महासागरमें विषकी एक कणिकाका भी सर्वथा अभाव रहता है ।

अच्छा ! यदि किसी तरह भगवानके क्षुधा वेदना मान ली जायगी तो फिर यह भी विचार करना पडेगा कि वह क्षुधा वेदना भगवानके अनन्त सुखको पूर्ण रूपसे घात करती है ? अथवा उसके थोडेसे भागको ? कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार करो अर्थात् अनंत सुखको पूर्ण रूपसे घात करती है ऐसा मानो तो बन नहीं सकता क्योंकि क्षुधा वेदनाका दुःख थोडा है इसलिए

वह अनंत सुखका घात कर नहीं सकता। दूसरी बात यह है कि सुख और दुःख दोनों विरोधी हैं उन दोनोंका एक ही समयमें एक जगह रहना नितांत असम्भव है। फिर भला केवली भगवानके उस दुःखके एक अंशकी संभावना भी किस प्रकार हो सकती है। यदि उन केवली भगवानके दुःखका एक अंश भी मान लिया जायगा तो फिर रास्ते चलते पुरुषके समान उनका सुख भी एक अंश रूप मानना पडेगा फिर उस सुखको अनंत सुख नहीं कह सकते कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् वह क्षुधाकी वेदना उस सुखके थोडेसे भागको घात करती है ऐसा मानो तो भी केवली भगवानको रास्तेमें चलनेवाले किसी पुरुषके समान दुःखी ही मानना पडेगा (क्योंकि विरोधी दुःखके रहनेसे पूर्ण सुख तो था ही नहीं, थोडासा था उसका घात हो गया) इसलिए कहना चाहिए कि जिसप्रकार अग्नि अपने विरोधी शीतको दूर कर देती है उसीप्रकार केवली भगवानमें रहनेवाला अनंत सुख भी अपने विरोधी दुःखको (भूखकी वेदनाको) दूर कर देता है। भूखका दुःख और दुःख इन दोनोंमें व्याप्य व्यापक भाव है जैसे सीसोंके वृक्ष और वृक्षमें है। जिसप्रकार व्यापकरूप वृक्षके अभाव होनेसे व्याप्यरूप सीसोंके वृक्षका अभाव अपने आप सिद्ध हो जाता है उसीप्रकार व्यापकरूप दुःखके अभाव होनेसे व्याप्यरूप भूखके दुःखका अभाव अपने आप सिद्ध हो जाता है। इसी बातको अनुमान द्वारा दिखलाते हैं। जहांपर जिसका बलवान विरोधी होता है वहांपर उसका प्रबल हेतु होनेपर भी वह नहीं रह सकता जैसे अत्यंत उष्ण प्रदेशमें शीत नहीं रह सकता। केवली भगवानके क्षुधा वेदनाका विरोधी अनंत सुख विद्यमान है इसलिए उनके क्षुधा वेदना नहीं हो सकती। तथा जहांपर जिसके कार्यका विरोधी विना हटे बना रहता है वहांपर (उस कार्यका कारण) पूर्ण-

रूपसे विद्यमान होकर भी अपना कार्य नहीं कर सकता जैसे श्लेष्मा उत्पन्न करना दहीका कार्य है परंतु जिस मनुष्यमें श्लेष्माका विरोधी पित्त आक्रमण कर लेता है उस मनुष्यमें दही अपना श्लेष्मारूप कार्य नहीं कर सकता। इसीप्रकार केवली भगवानमें वेदनीय कर्मका कार्य क्षुधा वेदनाका विरोधी अनंत सुख विना हटे बराबर विद्यमान रहता है इसलिए वह वेदनीय कर्म विद्यमान रहते हुए भी क्षुधा वेदनारूप कार्यको नहीं कर सकता।

कदाचित् यह कहो कि नाम कर्मका भेद आहार पर्याप्ति ही भोजनका कारण है और वह केवली भगवानके है सो यह कहना ठीक है परन्तु आहार पर्याप्ति आहार सामान्यके लिए कारण है। जहां २ आहार पर्याप्ति है वहां वहांपर कवलाहार है ऐसा नियम बनाना ठीक नहीं हो सकता क्योंकि देव नारकी एकेंद्रिय जीव और निराहार रहनेवाले मनुष्योंके द्वारा व्यभिचार दोष आता है अर्थात् इनके आहार पर्याप्ति तो है परंतु कवलाहार नहीं है यदि ऊपर का नियम मानोगे तो इन सबके कवलाहार मानना पडेगा। इसलिए आहार पर्याप्ति कवलाहारका कारण नहीं है।

इसके आगे—यदि मोहनीयके साथ रहनेवाला वेदनीय कर्म ही भोजनका कारण माना जायगा तो फिर केवली भगवानके होनेवाले गति स्थिति आदि कार्योंमें भी मोहनीयका सहकारीपना मानना चाहिए इत्यादि कहा था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि शुभ प्रकृतियां किसीके द्वारा बाधित नहीं हैं इसलिए वे मोहनीय कर्मकी सहायताके विना भी अपना कार्य करती रहती हैं। जिसप्रकार यथार्थ मार्गपर चलनेवाला और सेना आदि समस्त सामर्थ्यसहित कोई राजा किसी देशपर अपना अधिकार कर ले तो फिर उस देशके दुष्ट लोग यद्यपि जीवित रहते

हैं तथापि वे अपनी दुष्टता नहीं कर सकते और सज्जन लोगोंको अपने कार्य करनेमें कोई विघ्न नहीं आता इसलिए उनका कार्य तो बराबर होता ही चला जाता है इसीप्रकार यहां भी समझना चाहिये। कदाचित् यह कहा जाय कि अरहंत भगवानके अशुभ प्रकृतियोंकी ही सामर्थ्य नष्ट क्यों होती है, शुभ कर्मोंकी सामर्थ्य नष्ट क्यों नहीं होती ? सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अरहंत भगवान् अशुभ प्रकृतियोंके अनुभागका छेदन करते रहते हैं परन्तु वे शुभ प्रकृतियोंके अनुभागका छेद नहीं करते क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि गुणोंके नाश करनेवालेको ही दंड दिया जाता है निरपराधीको नहीं।

दूसरी बात यह है कि केवलीके आहार माननेसे आहारके कार्योंका विरोध आता है। कदाचित् यह कहा जाय कि आहारका विरुद्ध कार्य कौनसा है। तो इसका उत्तर यह है कि रसना इंद्रियसे उत्पन्न होने वाला मतिज्ञान आदि ही आहारका कार्य है। और यह बात तुमने ही प्रेरणापूर्वक कही है परन्तु केवली भगवानके रसना इंद्रियसे उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानका अत्यन्त विरोध है क्योंकि वह उनके है ही नहीं। इसलिये केवलीके आहार माननेसे भगवानके मतिज्ञानरूप आहारके कार्यके साथ विरोध आता है।

इसके आगे तुमने जो यह कहा था कि यदि आहार ग्रहण करनेमात्रसे भगवानके मतिज्ञानका प्रसंग माना जायगा तो भगवानके देवोंके द्वारा बजाए जानेवाले बाजोंके शब्दोंसे श्रोत्र इंद्रियसे उत्पन्न होनेवाला मतिज्ञान मानना चाहिए। देवोंके द्वारा बरसाये हुए बहुतसे फूलोंकी सुगंधसे तथा गंधोदककी वर्षासे घ्राण इंद्रियसे उत्पन्न होनेवाला मतिज्ञान मानना चाहिये तथा सिंहासनके स्पर्शसे स्पर्शन इंद्रियसे उत्पन्न होनेवाला मतिज्ञान भी मानना चाहिये। परंतु

तुम्हारा यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि पदार्थ आदि विषय और इंद्रिय आदि विषयी इन दोनोंके सन्निपात (योग्य संबंध) होने पर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं। इस हिसाबसे केवली भगवानके श्रोत्र घ्राण और स्पर्शन इंद्रियसे उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानके कहने मात्रकी भी संभावना नहीं हो सकती। क्योंकि बाजोंके शब्द फूलोंकी गंध और सिंहासनके स्पर्शसे भगवानकी इंद्रियोंका कोई संबंध नहीं होता। परंतु जो आहारका ग्रास स्वयं बनाया है और उसे अपने पेटरूपी गढेमें डालनेकी जिनकी इच्छा है ऐसे उन भगवानके अवश्य ही ममत्व मानना पडेगा और ममत्व होनेसे ही उनके मतिज्ञान मानना पडेगा। यदि इसप्रकार आहार ग्रहण करते हुए भी ममत्व न माना जायगा तो फिर स्त्रीका ग्रहण करलेनेपर भी ममत्व नहीं होना चाहिये। रही बाजे और पुष्पवृष्टिकी बात, सो वे तो देवोंने भक्तिपूर्वक किये हैं इसलिये पर होनेसे भगवानके उनका अनुभव नहीं हो सकता। यदि भगवानके पर पदार्थोंका भी अनुभव माना जायगा तो फिर अन्य संसारी जीवोंके द्वारा कल्पना किए हुए भोग उपभोगोंका अनुभव भी उनके क्यों नहीं मानना चाहिये।

इसके आगे जो तुमने कहा था कि आहार ग्रहण करनेसे ध्यानमें भी विघ्न नहीं हो सकता सो भी कभी ठीक नहीं हो सकता क्योंकि आहार ग्रहण करते समय इष्ट आहारके ग्रहण करने और अनिष्ट आहारके परिहार वा त्याग करनेके आधीन भी उन्हें होना पडेगा अर्थात् इष्टका ग्रहण अनिष्टका त्याग करना पडेगा तथा इसकेलिये उन्हें योग्य अयोग्यका बिचार भी करना पडेगा इसलिये ऐसे बिचार करते समय अवश्य ही उनके ध्यानका नाश मानना पडेगा क्योंकि उससमय भगवानके ध्यानका नाश अपने आप हो जायगा। कदाचित्

यह कहो कि उन भगवानका ध्यान अविनाशीक है वह कभी नष्ट नहीं हो सकता तो भगवान के स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा भी उत्पन्न क्यों नहीं हो सकती क्योंकि ध्यानके अवि· नाशीक होनेसे उसके नाश होनेका तो कोई भय ही नहीं है इसलिये जिसप्रकार स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छासे ध्यानका नाश होता है उसीप्रकार आहार ग्रहण करनेकी इच्छासे भी अवश्य ही ध्यानका नाश होना मानना पडता है।

इसके आगे जो तुमने यह कहा था कि आहार ग्रहण करते हुए भी भगवानके धर्मोपदेश देनेरूप परोपकारका अंतराय नहीं होता क्योंकि वे उपदेश सवेरे दोपहर शामको ही देते हैं आदि सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उपदेशके समय वे क्षुधासे पीडित रहेंगे और क्षुधासे पीडित होनेके कारण उनके अनंत सुखका विनाश अवश्य मानना पडेगा।

कदाचित् यह कहा जाय कि इंद्रियोंके कार्य करनेमें मतिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम सहकारी कारण है और वह केवली भगवानके है नहीं इसलिये अपने विषयभूत पदार्थोंका संबंध होनेपर भी भगवानके इंद्रियां अपना कार्य नहीं कर सकतीं तो फिर यह भी क्यों नहीं मानना चाहिए कि वेदनीय कर्मके लिए मोहनीय कर्म सहकारी है और भगवानके उस मोह· नीय कर्मका अभाव है इसलिये सहकारीके अभाव होनेसे वेदनीय कर्म भी भगवानको अपना फल नहीं दे सकता। इसप्रकार भगवानके आहारके कार्योंका विरोध होनेसे उनके आहारकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती।

कदाचित् यह कहो कि वे सर्वज्ञ हैं इसलिए उनके अनंत सुख बना रहेगा सो भी ठीक नहीं है क्योंकि क्षुधाकी वेदनासे उनका सर्वज्ञपना भी दूर भग जायगा अर्थात् नष्ट हो जायगा

और इस तरह वे अनंत सुख और अनंत ज्ञानसे रहित होनेके साथ साथ वे अनंत वीर्यसे भी रहित हो जायंगे। भावार्थ—उनके समस्त अनंत चतुष्टय नष्ट हो जायंगे क्योंकि यह बात जगत प्रसिद्ध है कि जब हम तुम लोग क्षुधाकी वेदनासे पीडित होते हैं तब हमारे तुम्हारे भी ज्ञान सुख वीर्य आदि सब नष्ट हो जाते हैं। "इस समय मैं क्षुधाकी वेदनासे पीडित हूं इसलिए मैं इस समय कुछ नहीं जानता, न कुछ मुझे दिखाई ही पडता है। मैं इस समय खडा भी नहीं हो सकता और न कुछ कह ही सकता हूं। इस समय मुझसे कोई बातचीत न करो यदि इस समय मुझसे कोई बात चीत करेगा तो मुझे क्रोध उत्पन्न हो आयगा" ऐसी बातें सबके मुहसे निकलती हैं संसारभर इनको जानता है। इससे सिद्ध होता है कि आहार ग्रहण करनेसे धर्मोपदेश देनेरूप परोपकारके काममें भी भगवानके अवश्य अंतराय मानना पडेगा। लिखा भी है—

आदौ रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसिनी, ज्ञानभ्रंशकरी तपःक्षयकरी धर्मस्य निर्मूलिनी।
पुत्रभ्रातृकलत्रभेदनकरी लज्जाकुलच्छेदिनी सा मां पीडति विश्वदोषजननी प्राणापहारी क्षुधा॥

अर्थ—यह भूख पहले तो रूपको नष्ट करती है, शरीरको कृश करती है, कामको नष्टकर देती है, ज्ञानको भ्रष्ट कर देती है, तपश्चरणको क्षय कर देती है, धर्मको जडसे नाश कर डालती है, पुत्र भाई स्त्री आदिमें भेद भाव कर देती है और लज्जाके कुलको उखाड डालती है। यह भूख समस्त दोषोंको उत्पन्न करनेके लिए माताके समान है और प्राणों तकको नष्ट करनेवाली है। ऐसी क्षुधा मुझे दुख दे रही है।" ऐसा शास्त्रकारोंका वचन है। इसलिए उसके उदयके बाद ही यदि भोजनकी प्राप्ति नहीं हुई तो ग्लानि और यथार्थ ज्ञानकी हीनताका मार्ग प्रतिपादन करना पडेगा? अर्थात् भगवानके ये दोनों ही बातें माननी पडेंगी। कदाचित् यह कहो

कि भोजन करनेसे सुख और बल बढता है। इसलिए भोजन करनेसे भगवानमें भी अनंत बलकी वृद्धि होती है। संसारमें हम तुम लोगोंके भूखकी बाधा होने पर अशक्तता और भोजन करनेके बाद सुख तथा बलकी वृद्धि देखी जाती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि हम तुम लोगोंको सुख कभी कभी होता है और वह भी विषयोंसे उत्पन्न होता है। यदि केवली भगवानके हमारे तुम्हारे समान विषयोंसे उत्पन्न हुआ ही सुख मानोगे तो फिर वह उनका सुख अनंत नहीं हो सकेगा क्योंकि क्षुधाकी वेदनासे जिससमय उनके उदरमें पीडा होगी और वे शक्तिरहित हो जांयगे उसी समय वे कवलाहार ग्रहण करनेमें प्रवृत्त होंगे इसलिए उसीसमय उनके सुख और बलका अभाव मानना पडेगा फिर भला उनके अनंत सुख और अनंत बल किस प्रकार हो सकेगा? इसके आगे जो उस कर्मके उदयके बाद तीसरे पहर देवच्छंदक नामके स्थानमें जाकर भोजन करते हैं इत्यादि कहा था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। कदाचित् यह कहो कि हमारे शास्त्रोंमें लिखा है इसलिए आगम प्रमाण है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इस आगमको वादी प्रतिवादी दोनों नहीं मानते इसलिए इसको प्रमाण मानना सर्वथा असंभव है। कदाचित् यह कहो कि हमारे शास्त्रोंमें तो लिखा है इसलिए केवलीके भोजनका सद्भाव मानना ही पडेगा सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे केवली भगवानके भोजन और उपसर्ग दोनोंका अभाव है ऐसा भी हमारे शास्त्रोंमें लिखा है इसलिए उसे भी मानना पडेगा। इसलिए आगमकी प्रमाणता किसी तरह नहीं बन सकती।

अच्छा! किसी तरह मान लो कि भगवान भोजन करते हैं परन्तु यह तो बतलाना चाहिए कि भगवान समवसरणको छोडकर देवच्छंदक स्थानमें क्यों जाते हैं? चित्तकी विक्षिप्तताको

दूरकर ध्यानकी सिद्धिके लिए जाते हैं वा इंद्रियोंको निरोधकर सुखपूर्वक विराजमान होनेके लिए जाते हैं अथवा एकांतमें कोई काम वा आचरण करनेके लिए जाते हैं। कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार करो। चित्तके क्षोभको दूर कर ध्यानकी सिद्धिकेलिए जाते हैं ऐसा मानो सो ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवान मनरहित हैं फिर भला उनके चित्तके क्षोभको दूर करना बन कैसे सकेगा? केवली भगवानके उपचारसे ही योग निरोध माना है और इसलिए उपचारसे ही उनके ध्यानका प्रतिपादन किया है इसलिए पहला कथन बन नहीं सकता। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् इंद्रियोंको निरोधकर सुखपूर्वक विराजमान होनेके लिए जाते हैं ऐसा मानो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जब भगवानके अनंत शक्ति है तब फिर उनके इंद्रियनिरोध की असमर्थता सिद्ध ही नहीं हो सकती फिर जाते किस लिए हैं। दूसरी बात यह है कि जब भगवानके अनंत सुख है तब फिर दुःखके एक अंशकी संभावना तो है नहीं फिर वहीं जाकर सुखपूर्वक विराजमान होते हैं पहले सुखपूर्वक नहीं रहते यह बात कैसे बन सकती है। इसलिए दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है। कदाचित् तीसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् एकांत स्थानमें कोई काम करनेके लिए जाते हैं ऐसा मानो तो फिर बताना चाहिए कि वह कार्य निंद्य है अथवा अनिंद्य? निंद्य कह नहीं सकते क्योंकि केवली भगवानके समस्त दोष नष्ट हो गए हैं इसलिए उनके निंद्य कार्यका करना संभव ही नहीं हो सकता। यदि उस कार्यको अनिंद्य कार्य मानो तो वह आहार करना है अथवा कर्मोंको नाश करना है। आहाररूप कार्य हो नहीं सकता क्योंकि भगवान मोहरहित हैं इसलिए उनके आहारका निषेध स्वयं सिद्ध है। यदि मान भी लिया जाय कि उनके आहारका निषेध नहीं है तो फिर यह तो बताना चाहिए कि वे एकांतमें ही जाकर

भोजन क्यों करते हैं। किसीके दृष्टिदोषके डरसे? याचकोंके डरसे अथवा वह अनुचित आचरण है इसलिए? पहला पक्ष स्वीकार कर नहीं सकते क्योंकि केवली भगवानके दृष्टिका दोष लग ही नहीं सकता। अरे जिनका नाम लेनेमात्रसे दूसरे प्राणियोंके दृष्टिदोष दूर हो जाते हैं फिर भला उनके वह दृष्टिदोष किस प्रकार लग सकता है? कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो याचकोंके डरसे एकांतमें भोजन करते हैं ऐसा मानो तो फिर केवली भगवानको अत्यंत दीन मानना पडेगा। क्योंकि जिस प्रकार कोई पिता अपने भूखे पुत्रोंको छोडकर एकांतमें जाकर भोजन करे तो वह योग्य नहीं गिना जाता उसीप्रकार भगवान भी अपने पीछे लगे हुए अनेक भूखे शिष्योंको छोडकर एकांतमें भोजन करते हैं यह बात उनके योग्य नहीं है। इसलिए दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है। कदाचित् तीसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् वह अनुचित आचरण है इसलिए वे एकांतमें जाकर भोजन करते हैं ऐसा मानो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उनके लिए स्त्रीसेवनकी कल्पनाके समान अनुचित आचरणोंकी कल्पना करना कभी ठीक नहीं हो सकती। इसलिए यह तीसरा पक्ष भी ठीक नहीं है। कदाचित् यह कहो कि कर्मोंको नाश करनेके लिए भगवान एकांतमें जाते हैं तो फिर बतलाना चाहिए कि वे पहलेके उपार्जन किए हुए कर्मोंको नाश करनेके लिए एकांतमें जाते हैं अथवा भोजन करते समय उपार्जन किए हुए कर्मोंको नाश करनेके लिए एकांतमें जाते हैं। यदि पहले उपार्जन किए हुए कर्मोंको नाश करनेके लिए जाते हैं तो वे पहले उपार्जन किए हुए कर्म घातिया हैं अथवा अघातिया? घातिया हो नहीं सकते क्योंकि उनको वे पहले ही नष्ट कर चुके हैं तथा वे कर्म अघातिया भी नहीं हो सकते क्योंकि अघातिया कर्म चौदहवें गुणस्थानमें नष्ट किए जाते हैं दूसरी बात यह है कि केवली

भगवानके शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा कर्मरूपी ईंधनके समूहको जलानेकी सामर्थ्य सदा बनी रहती है। इसलिए यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनकी ध्यानरूप अग्नि देवछंदक स्थानमें ही जलती है समवसरणमें नहीं। यदि इस बातको भी स्वीकार कर लोगे तो फिर समवसरणमें विराजमान हुए भगवानके ध्यानमें अंतराय भी मानना पडेगा इसलिये अघातिया कर्मोंका नाश भी नहीं बन सकता है। कदाचित् यह कहो कि भोजनके समय उपार्जित किये हुए कर्मोंका नाश करते हैं तो वे किससे उन कर्मोंका नाश करते हैं क्या प्रतिक्रमणसे? यदि प्रतिक्रमणसे कहो तो ठीक है परंतु फिर भगवान निर्दोष नहीं ठहर सकते इसी बातको अनुमान द्वारा दिखलाते हैं—भगवान निर्दोष नहीं हैं क्योंकि वे हम तुम लोगोंके समान भोजन करनेके बाद प्रतिक्रमण करते हैं। किए हुए दोषोंका निराकरण करना ही प्रतिक्रमण कहलाता है फिर भला उस प्रतिक्रमणको करनेवाले, किये हुए दोषोंको दूर करनेवाले, भगवानके निर्दोषता किसप्रकार सिद्ध हो सकेगी? यदि वे भगवान प्रतिक्रमण नहीं करते तो फिर वे उस भोजनसे उत्पन्न हुए दोषोंको किसप्रकार दूर करते हैं? कदाचित् यह कहो कि भगवानके भोजन करने से भी दोष उत्पन्न नहीं होते सो ठीक नहीं है क्योंकि जब अप्रमत्त संयमी मुनि भोजनके वचन मात्र कहनेसे ही सप्रमत्त (प्रमत्तसहित वा दोषी) हो जाते हैं तब फिर केवली भगवान भोजन करते रहनेपर भी सप्रमत्त वा सदोषी नहीं होंगे? यह एक बडे भारी आश्चर्यकी बात है? तथा जब भगवान इसप्रकार सप्रमत्त वा सदोषी हो जायंगे तो फिर उन्हें श्रेणीसे भी गिरना पडेगा फिर भला वे सर्वज्ञ किसप्रकार हो सकेंगे? इसके सिवाय उनके विसूचिका आदि अनेक व्याधियां तो बढेंगी ही? इसलिये भगवानके कवलाहार मानना उनके स्वरूपको विगाड देना है।

कदाचित् यह कहो कि भगवान जान बूझकर हितमितरूप आहार ग्रहण करते हैं इसलिए उनके किसी प्रकारके दोष उत्पन्न नहीं हो सकते सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जब वे हितरूप आहार को ग्रहण कर लेंगे और आहितरूप आहारको छोड़ देंगे तो फिर उनके रागद्वेष मानना ही पडेगा दूसरी बात यह है कि कवलाहार ग्रहण करनेसे उन्हें सरागी मानना ही पड़ेगा यह बात पहले भी प्रतिपादन कर चुके हैं। तथा कवलाहार माननेसे उनके ईर्यापथसमिति भी माननी ही पडेगी। कदाचित् यह कहो कि वे भगवान समवसरणमें विराजमान होकर ही भोजन करते हैं इसलिए उनमें ऊपर लिखे दोष नहीं बन सकते तो फिर यह भी कहना चाहिये कि उन भगवानने अपना मार्ग भी नष्ट कर दिया ? (मुनियोंको चर्यामार्गसे भोजन करना चाहिये परंतु भगवान समवसरणमें विराजमान होकर ही भोजन करते हैं चर्यामार्गसे नहीं करते इस-लिए उन्होंने ही इसमार्गको नष्ट किया समझना चाहिये।) यदि भगवान चर्यामार्गसे भोजन करते हैं तो भोजनके लिए घर घर जाते हैं अथवा "इस घरमें आहार मिलेगा" ऐसा निश्चय कर उसी एक घरमें जाते हैं ? यदि पहला पक्ष स्वीकार करो अर्थात् घर घर जाते हैं ऐसा मानों तो उन्हें अज्ञानी भी मानना पडेगा (क्योंकि आहार मिलेगा या नहीं अथवा किस घरमें मिलेगा यह उन्हें मालूम नहीं है) यदि दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् अपने ज्ञानसे निश्चयकर किसी एक ही घरमें जाते हैं ऐसा मानों सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे चर्याकी शुद्धता नहीं बन सकेगी और फिर "हमको इस घरमें आहार मिलेगा' यह समझकर उस घरमें प्रवेश करने से उन भगवानके निर्ममत्वका अभाव क्यों नहीं सिद्ध हो सकेगा ? फिर उनको मोहरहित कौन

कहेगा? इसप्रकार भगवानके हितामितरूप कवलाहारकी सिद्धि भी किसी प्रकार नहीं हो सकती। संशयि- विदारण

५९ इसके आगे जो तुमने यह कहा था कि भोजन करनेमें ग्लानि भी नहीं हो सकती क्योंकि भोजन करनेमें भगवानको ही ग्लानि होगी या अन्य लोगोंको? भगवानको हो नहीं सकती क्योंकि वे मोहरहित हैं तथा अन्य लोगोंको भी नहीं हो सकती इत्यादि सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार तुम भगवानके मोहराहित होनेसे ग्लानिका अभाव स्वीकार करते हो उसी-प्रकार उनका वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मका सहकारी न होनेके कारण अर्थात् मोहनीयके साथ रहनेवाले मोहनीयकी सहायतासे काम करनेवाले वेदनीय कर्मका अभाव होनेसे उन भगवान के भोजनका ही अभाव क्यों नहीं मान लेते हो? लिखा भी तो है "घादीव अघादी वा मोहस्स बलेन घाददे जीवं। इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्मि पाडिदं तु ॥ १ ॥ अर्थात् घातिया कर्मोंके समान अघातिया कर्म भी मोहनीय कर्मकी सहायतासे ही जीवका घात करते हैं इसलिए घातिया कर्मोंमें भी मोहनीयको सबसे मुख्य माना है तथा सबसे पहले उसीको कहा है।" इसलिए इस-प्रकार भी भगवानके भोजनका अभाव मानना पडता है। इसके आगे जो तुमने "मनुष्य व्यंत-रादिकोंको नग्नपनेसे घृणा होनी चाहिये आदि" कहा था सो भी मद्य पिए हुए पुरुषके द्वारा कहे हुएके समान जान पडता है क्योंकि नग्नपना ग्लानि वा घृणाका कारण कभी नहीं हो सकता शैव आदि अन्य मतके लोग तथा तुम लोग भी इस बातको स्वीकार करते ही हो। यदि नग्न-पनेसे ग्लानि उत्पन्न होना मानोगे तो आचेलक्य (वस्त्रराहित नग्नपना) परीषहका भी अभाव मानना पडेगा। तुम आचेलक्य परीषहको नहीं मानते यह बात भी नहीं है क्योंकि— ५९

"आचेलकुदेसीय सिस्सा (ज्झा) हररायपिंडाकिदिकम्मे,वदाजिट्ठपाडिकम्मणे मासं पज्जोसवणकप्पो" इत्यादि तुम्हारे शास्त्रोंमें लिखा है। कदाचित् यह कहो कि भगवानके अतिशय होनेसे उनका नग्नपना दिखता नहीं है तो फिर उसी अतिशयके प्रभावसे भोजनका अभाव भी मान लेना चाहिए।

इसके आगे जो तुमने यह कहा था कि सामान्यकेवली किसी एकांत स्थानमें जाकर भोजन करते हैं इसलिये उनके दोष नहीं आता सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें बहुतसे दोष आते हैं भोजन करते हुए भी वे किसीको दिखाई नहीं देते सो उनके दिखाई न देनेमें कारण क्या है? क्या उनका वह प्रदेश गाढ अंधकारसे छिपा रहता है? वा किसी कपडेके परदेसे छिपा रहता है? अपनी विद्याके बलसे वे अदृश्य रहते हैं वा दूसरे मनुष्योंमें न मिल सके ऐसे उनके अतिशयके माहात्म्यसे दिखाई नहीं देते अथवा किसी अयोग्य आचरण करनेके कारण वे छिपकर रहते हैं? इनमेंसे चतुर लोग पहला पक्ष मान नहीं सकते क्योंकि उनके शरीरके तेजसे अंधकारका समूह जडमूलसे नष्ट हो जाता है। यदि दूसरा पक्ष मानो अर्थात् वह स्थान कपडेके परदेसे छिपा रहता है ऐसा मानो तो फिर दाता लोग उन्हे दान आहार दान किस प्रकार देते हैं? यदि तीसरा पक्ष मानो तो विद्याधरोंके समान उनके निर्गंथपनेका अभाव मानना पडेगा? क्योंकि विद्याके बलसे अपनेको छिपाना निर्ग्रंथपनेका विरोधी है। चौथा पक्ष मानो अर्थात् अतिशयसे ऐसा मानो तो फिर उस अतिशयसे भोजनका अभाव ही क्यों नहीं मान लेते हो क्योंकि प्रमाणसे भोजनका ही अभाव सिद्ध होता है। यदि पांचवां पक्ष स्वीकार करो अर्थात् अयोग्य आचरण करनेके कारण वे छिपकर रहते हैं

ऐसा मानो तो जिस प्रकार छिपकर परस्त्रीको ग्रहण करनेवाला दीन गिना जाता है उसी-प्रकार अयोग्य आचरणरूप भोजनको छिपकर ग्रहण करनेवाले केवली भगवान भी दीन गिने जांयगे। इसलिये इसप्रकार भी भगवानके आहारका अभाव ही सिद्ध होता है। कदाचित् यह कहो भोजन करनेसे धातुओंकी वृद्धि होती है परन्तु उससे स्त्रियोंके साथ भोग करनेकी इच्छा और निद्रा उत्पन्न नहीं होते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि धातुओंकी वृद्धि होनेसे भोग करनेकी इच्छा और निद्राका अस्तित्व सबने स्वीकार किया है। धातुओंकी वृद्धिका अभाव होनेसे ही उन दोनोंका अभाव होता है। इसप्रकार भी केवलीके आहारकी सिद्धि नहीं हो सकती।

इसके आगे जो तुमने " भोजनके सहचरोंके साथ भी केवली भगवानका कोई विरोध नहीं आता क्योंकि भोजनके साथ रहनेवाले छद्मस्थपनेका विरोध आता नहीं क्योंकि भोजन और छद्मस्थपना इन दोनोंका साथ हमी तुम लोगोंके देखा जाता है। इसीप्रकार हम तुम लोगोंके समान हाथ मुह आदिका चलना भी सर्वज्ञका विरोधी नहीं हो सकता " इत्यादि कहा था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिन बातोंका हम तुम लोगोंमें विरोध नहीं आता उन बातोंका विरोध सर्वज्ञमें भी नहीं आता इसप्रकारका नियम बन नहीं सकता। यदि यह नियम मान लिया जायगा तो फिर थोडी शक्तिका होना भी हम तुम लोगोंको अविरोधी है इसलिये वह सर्वज्ञका भी अविरोधी होना चाहिये और यदि ऐसा मान लिया जायगा तो फिर भगवानके अनंत शक्तिका अभाव ही मानना पडेगा तथा राम रावण आदि बलभद्र नारायण प्रतिनारायण चक्रवर्ती आदि लोगोंके भी विशेष सामर्थ्यका अभाव ही मानना पडेगा क्योंकि जैसे वर्तमान

समयके मनुष्योंमें विशेष सामर्थ्य नहीं है उसी प्रकार उनमें भी उस विशेष सामर्थ्यका अभाव ही मानना पडेगा इसलिये मानना चाहिये भोजनके साथ रहनेवाले छद्मस्थपना अल्पशक्तिका होना आदिक सर्वज्ञमें नहीं हैं इसलिये सर्वज्ञमें भोजनका भी अभाव ही है। कदाचित् यह कहो कि हाथ चलाना मुह चलाना आदि भोजनके सहचर भी केवलीके विरुद्ध नहीं हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि हमारे तुम्हारे समान हाथ मुह चलानेसे भगवानको सरागी मानना पडेगा। जिसप्रकार हम तुम हाथ मुह चलाते हैं इसलिए सरागी हैं उसीप्रकार भगवान भी हाथ मुह चलाते हैं इसलिये वे भी सरागी हैं। ऐसा मानना पडेगा। तथा—

नो किंचित्करकार्यमस्ति गमनप्राप्यं न किंचिद् दृशो
दृश्यं यस्य न कर्णयोः किमपि हि श्रोतव्यमप्यस्तिन ॥
तेनालंबितपाणिरुज्झितगतिर्नासाग्रदृष्टी रहः
संप्राप्तोतिनिराकुलो विजयते ध्यानैकतानो जिनः ॥ १ ॥

अर्थात् भगवानके कोई हाथसे करने योग्य कार्य नहीं रहा है इसलिए उन्होंने दोनों हाथ नीचेकी ओर लटका दिए हैं। चलने योग्य कोई देश नहीं रहा है इसलिये उन्होंने गमन करना छोड दिया है। आंखोंसे कुछ देखना बाकी नहीं रहा है इसीलिए उन्होंने अपनी दृष्टि नासिका पर रखली है और कानोंसे कुछ सुनना बाकी नहीं है इसीलिए वे एकांतमें जाकर विराजमान हुए हैं। इसप्रकार सब तरहसे निराकुल होकर एक ध्यानमें ही लीन होनेवाले भगवान जिनेंद्र देव सदा जयशील हों " इत्यादि शास्त्रकारोंके वचनोंके अनुसार भगवानके हाथ मुह चलाने का अभाव प्रसिद्ध ही है।

इसके आगे जो "बालक स्त्री आदिकोंमें ज्ञानकी हीनता होनेसे क्षुधाकी वृद्धि नहीं देखी जाती" इत्यादि कहा था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अनंत सुखके साथ रहनेवाले ज्ञान आदि गुण ही भूखके विरोधी हैं हम तुम लोगोंके ज्ञानादिक क्षुधाके विरोधी नहीं हैं। भगवानके तो अनंत सुख है इसलिए उनके ज्ञानादिकके साथ क्षुधाका विरोध वा अभाव भी अवश्य मानना पडता है। इसके आगे " भगवानके ज्ञानादिक गुण क्षुधाका विरोध करते हैं यह आधुनिक लोग नहीं जान सकते क्योंकि भगवानके ज्ञान आदिक गुण अतींद्रिय हैं इसलिए क्षुधा आदि का विरोध करते हैं वा नहीं यह बात हम लोग इंद्रियोंसे कैसे जान सकते हैं" इत्यादि कहा था सो भी अनुचित ही है क्योंकि भगवानके ज्ञानादिक गुण अतींद्रिय हैं इसलिए उनके विरोधियोंका ज्ञान भी जब हम लोगोंको नहीं हो सकता तो फिर वे सर्वज्ञ हैं इस बातका भी ज्ञान हम लोगोंको किस प्रकार हो सकेगा। क्योंकि जिसप्रकार केवली भगवानका ज्ञान अतींद्रिय है इंद्रियोंसे नहीं जाना जा सकता इसलिए उसके रहते हुए क्षुधा नहीं होती यह बात भी हम तुम थोडा ज्ञान रखनेवालोंसे नहीं जानी जा सकती उसीप्रकार ये तीर्थंकर भगवान समस्त पदार्थों को साक्षात् जानते हैं अर्थात् सर्वज्ञ हैं यह बात भी हम तुम लोग कैसे जान सकते हैं? कदाचित् यह कहो कि ये तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ हैं यह बात हम अनुमानसे जान लेंगे तो फिर " वह उनका ज्ञान क्षुधाका विरोधी है " इस बातने ही क्या अपराध किया है। जो यह बात अनुमानसे नहीं जानी जा सकेगी? भावार्थ—जब हम भगवानका सर्वज्ञ होना अनुमानसे जान सकते हैं तो फिर 'वह सर्वज्ञपना क्षुधाका विरोधी है' यह बात भी अनुमानसे जान सकते हैं। वह सर्वज्ञका ज्ञान क्षुधा आदिका विरोधी है यह बात पहले अनुमानसे सिद्ध कर चुके हैं। तथा

वह अनुमान यह है " भगवान भोजन नहीं करते क्योंकि उनके राग द्वेषका अभाव होकर अनंतवीर्य विद्यमान है यदि वे भोजन करते तो न उनकें तो रागद्वेषका अभाव होता और न अनंत वीर्य ही होता । जैसे भोजन करनेवाले हम तुम लोगोंमें न तो रागद्वेषका अभाव है और न अनंत वीर्य है । भगवानके तो रागद्वेषका अभाव और अनंत वीर्य विद्यमान है इसलिए उन के भोजनका भी अभाव है । इसप्रकार भगवानके क्षुधाका विरोध वा भोजनका अभाव सिद्ध होता है । कदाचित् यह कहो कि शत्रु मित्रको समान माननेवाले और चारित्रको पालन करने वाले योगियोंके भोजन करते हुए भी रागद्वेषका अभाव रहता है इसलिए यह ऊपर लिखा हुआ हेतु व्यभिचारी है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि मोहनीय कर्मके विद्यमान रहते हुए भोजन करनेवाले प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनियोंके वास्तवमें वीतरागता असम्भव है क्योंकि वीतरागता मोहनीय कर्मके नाशसे ही होती है इसलिए ऊपर लिखा हुआ कभी व्यभिचारी नहीं हो सक्ता। इसीप्रकार वह हेतु विरुद्ध भी नहीं हो सकता क्योंकि विपक्षवृत्तिमें कभी रहता नहीं है, भावार्थ– रागद्वेषका अभाव और अनंत वीर्य हम तुम भोजन करनेवालों अल्पज्ञोंमें नहीं रहता। इसलिए यह विरुद्ध नहीं है । इसप्रकार ऊपर लिखा अनुमान सर्वथा निर्दोष है और उसीसे भगवानके भोजनका अभाव सिद्ध होता है। बस ! बहुत कहां तक कहें ऊपर लिखी थोडीसी युक्तियोंसे ही भगवानके भोजन का अभाव अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है ।

इसके आगे जो तुमने यह कहा था कि केवली भगवानके ज्ञानावरण आदि कर्म पूर्णरूप से नष्ट हो गए हैं इसलिए क्षुधाके रहते हुए भी ज्ञानादिकका नाश नहीं हो सकता आदि सो भी सब व्यर्थ है क्योंकि जिसप्रकार केवली भगवानके ज्ञानावरण आदि कर्मोंके सर्वथा नष्ट

हो जानेसे ज्ञान आदि गुणोंका नाश नहीं हो सकता उसीप्रकार समस्त मोहनीय कर्मके नाश होनेसे उनके क्षुधा वेदनाका एक अंशमात्र भी संघटित नहीं हो सकता। कदाचित् यह कहो कि वेदनीय कर्मके होनेसे क्षुधा वेदना हो सकेगी सो भी ठीक नहीं है क्योंकि वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मकी सहायतासे ही क्षुधा वेदनाको उत्पन्न कर सकता है यह बात पहले बडे विस्तार के साथ निरूपण कर चुके हैं।

कदाचित् यह कहो कि यदि केवली भगवानके क्षुधा वेदनाका अभाव मान लिया जायगा तो 'एकादश जिने' अर्थात्—'केवली भगवानके ग्यारह परीषह होती हैं' इस आगमके सूत्र का विरोध क्यों नहीं हो जायगा? सो भी ठीक नहीं है क्योंकि केवली भगवानके इस सूत्रमें कही हुई ग्यारह परीषह उपचारसे मानी हैं जिस प्रकार कषायोंका अभाव होनेपर भी केवल काययोगकी सत्तामात्रसे केवली भगवानके लेश्याका अंश भी उपचारसे माना है उसीप्रकार मोहनीयके अभाव होनेपर भी केवल वेदनीयकी सत्तामात्रसे उन्हीं केवली भगवानके परीषहें भी उपचारसे ही मानी हैं। क्योंकि उन परीषहोंका निमित्त कारण वेदनीय है और उसका अस्तित्व भगवानके विद्यमान है यदि वास्तविक रीतिसे केवली भगवानके उन परीषहोंका अस्तित्व मान लेंगे तो वेदनीय कर्मके सद्भाव होनेसे क्षुधा वेदनाके समान रोग वध बन्धन शीत दंशमशक तृणस्पर्श आदि परीषहोंका सद्भाव भी उनके मानना पडेगा और इन परीषहों के मान लेनेसे भगवानको बहुत भारी दुखी मानना पडेगा और फिर इसप्रकार हम तुम लोगों के समान अत्यंत दुखी होनेसे वे भगवान अनंत सुखी किसप्रकार हो सकेंगे अर्थात् कभी नहीं। इसलिए भगवानके ग्यारह परीषहोंका अस्तित्व केवल उपचारसे माना है वास्तविक नहीं।

अथवा 'एकादश जिने' इस सूत्रको ही बाईस परीषहोंका निषेध करनेवाला समझना चाहिए। क्योंकि एकादशका अर्थ ग्यारह नहीं है किंतु ग्यारहका अभाव है। 'एकेन अधिका न दश इति एकादश' अर्थात्—न, दश, अदश। दशके अभावको अदश कहते हैं एकेन सह अदश एकादश। अर्थात्—एकके साथ दशके अभावको। भावार्थ—ग्यारहके अभावको एकादश कहते हैं। भगवानके घातिया कर्मोंका सर्वथा अभाव है इसलिए घातिया कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली परीषहोंका तो सर्वथा अभाव मानना ही पडता है अब वेदनीय कर्मके उदयसे होनेवाली बाकी की ग्यारह परीषहोंका अभाव इस सूत्रसे सिद्ध हो जाता है इसप्रकार इसी सूत्रसे बाईस परीषहोंका सर्वथा अभाव सिद्ध हो जाता है। इसका भी कारण यह है कि वेदनीय कर्मके उदयसे होनेवाली क्षुधा आदिक ग्यारह परीषह उसी वेदनीय कर्मके उदयसे होती हैं कि जो वेदनीय मोहनीय कर्मके साथ रहता है जो वेदनीय मोहनीयके साथ नहीं रहता जिसे मोहनीयकी सहायता नहीं है ऐसे वेदनीय कर्मके उदयसे कभी परीषहें उत्पन्न नहीं हो सकतीं। भगवानके मोहनीय कर्मका अत्यंत नाश हो गया है इसलिए केवल वेदनीय कर्मके उदयसे वे परीषहें कभी उत्पन्न नहीं हो सकती हैं। यदि केवली भगवानके केवल वेदनीय कर्मके उदयसे क्षुधा परीषह मानोगे तो फिर उनके रोग आदि परीषह भी क्यों नहीं हो सकेंगी? क्योंकि हमारे तुम्हारे भी तो उसी वेदनीय कर्मके उदयसे क्षुधा तृषाके समान रोग आदि सब वेदनाएं उत्पन्न होती ही हैं। इसलिए भगवानके जैसे रोग आदि परीषह नहीं होतीं उसीप्रकार क्षुधा परीषह भी नहीं होती। कदाचित् यह कहो कि छद्मस्थ तीर्थंकरोंके तथा भोगभूमिया आदि जीवोंके क्षुधाकी वेदना होनेपर भी रोग आदिकी वेदना नहीं होती है इसलिए यह हेतु व्यभिचारी है तो फिर

कवलाहार हेतु भी देवादिकोंमें अनेकांत है व्यभिचारी है क्योंकि देवादिकोंमें वेदनीय कर्मका उदय होनेपर भी उनके कवलाहारका अभाव है। इसलिए भी भगवानके कवलाहारका अभाव ही सिद्ध होता है।

इसके आगे जो यह कहा था कि केवली भगवान कुछ कम एक करोड पूर्व तक विहार करते हैं सो विना आहारके इतने दिनतक उनका शरीर किसप्रकार टिका रहेगा ? सो भी ठीक नहीं है क्योंकि शरीरके टिकावमें आयु कर्म ही कारण है यह वात पहले अच्छी तरह कह चुके हैं। तथा विना भोजनके भी वह शरीर जीवित रहने पर्यंत टिका रहता है इस वातका समर्थन भी पहले कर चुके हैं। इस हिसाबसे भी भगवानके भोजनकी सिद्धि नहीं हो सकती। इसके आगे जो कहा था कि यदि भोजन सदोष है तो उसके होनेसे वचन भी नहीं बन सकेंगे आदि सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि भगवानकी दिव्यध्वनि तीर्थंकर नाम कर्मके उदयसे होती है इस लिए वह दोषरूप नहीं हो सकती। तथा क्षुधा आदि अठारह दोषोंमें क्षुधाके समान वचनोंको दोषरूप कहा भी नहीं है इसलिए भगवानके वचनोंका अभाव तो नहीं होता किन्तु क्षुधाका अभाव अवश्य मानना पडता है। कदाचित् यह कहो कि भोजन तो केवल वेदनीय कर्मके उदय से होता है इसलिए उसका अस्तित्व तो भगवानके होना ही चाहिए सो भी ठीक नहीं है क्यों कि वेदनीय कर्म मोहनीयकी सहायतासे ही क्षुधाको उत्पन्न कर सकता है इस वातको भी पहले समर्थन कर चुके हैं। जिस प्रकार तीर्थंकर नाम कर्म मोहनीय कर्मके विनाश होनेकी सहायता से ही दिव्यध्वनिरूप श्रेष्ठ वचनोंको प्रकट करनेमें समर्थ होता है, विना मोहनीयके नाशके वह अपना कार्य नहीं कर सकता उसीप्रकार वेदनीय कर्म भी विना मोहनीयकी सहायतासे क्षुधा

वेदनाको प्रकट नहीं कर सकता। वह मोहनीयकी सहायतासे ही अपना कार्य करता है।

इसके आगे जो यह कहा था कि यद्यपि केवली भगवान समस्त तीनों लोकोंको देखते हैं तथापि अवधिज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानियोंके समान उनके अंतराय नहीं होंगे सो भी ठीक नहीं है क्योंकि अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान दोनों ही उपयोगसे उत्पन्न होते हैं। इसलिए वे उसी समय अपने जानने योग्य पदार्थोंको विषयभूत करते हैं और उन समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानते हैं। अवधिज्ञानी जिस समय अपने अवधिज्ञानका प्रयोग करते हैं उसी समय वे उस ज्ञानके विषयभूत समस्त पदार्थोंको देखते हैं। वे दूसरे समयमें (जिस समय कि वे अवधिज्ञानका प्रयोग नहीं करते) उन पदार्थोंको नहीं देख सकते। यदि वे अवधिज्ञानी भोजनके समयमें अपने अवधिज्ञानका प्रयोग करें तब तो उनके समस्त अंतरायोंकी कल्पना करना चाहिये किंतु भोजनके समय वे कभी अवधिज्ञानका प्रयोग नहीं करते इसलिये उनके कभी अंतरायोंकी संभावना नहीं हो सकती। परंतु केवलज्ञानमें तो यह बात हो नहीं सकती। क्योंकि वह हर समय स्फुरायमान–प्रगट रहता है और हर समय सब जगहके समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानता रहता है। इसलिए व्याध (बहेलिए) धीवर और शिकारी आदि लोग जो सदा सब जगह अनेक प्राणियोंकी हिंसा करते रहते हैं उनको प्रत्यक्ष देखते हुए तथा उन प्राणियोंके रुधिर मल मूत्र आदि अशुद्ध पदार्थोंको साक्षात् प्रत्यक्ष देखते हुए भी वे भगवान किसप्रकार भोजन करते हैं? यदि वे इस भारी हिंसाको प्रत्यक्ष देखते हुए भी भोजन करते हैं तो फिर कहना चाहिए कि वे बडे ही निर्दयी हैं। अरे जो यम नियम आदि व्रत शीलोंसे रहित हैं वे भी जीवोंकी हिंसा और विष्ठा आदि अशुद्ध पदार्थोंको देखते हुए भोजन नहीं करते हैं फिर भला अनेक प्रकारके

व्रत आदिकोंसे विभूषित वे तीर्थंकर भगवान अनेक जीवोंकी हिंसा और विष्ठा आदि अशुद्ध पदार्थोंको साक्षात् प्रत्यक्ष देखते हुए भी किसप्रकार भोजन ग्रहण करते हैं? यदि ऐसी हालत में भी वे भोजन ग्रहण करते हैं तो फिर कहना चाहिये कि वे भगवान यम नियम आदि व्रत शीलोंको पालन न करनेवाले लोगोंसे भी हीन हैं कदाचित् यह कहो कि जिसप्रकार हम तुम लोग शुद्ध अशुद्ध चाहे जैसे देखे हुए पदार्थोंका स्मरण करते हुए भी भोजन करते हैं उसीप्रकार भगवान भी समस्त पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखते हुए भी भोजन करते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यथाख्यात चारित्रको प्राप्त करनेवाले सर्वज्ञदेवके साथ हम लोगोंकी समानता कभी नहीं हो सकती। हम तुम किसी अशुद्ध पदार्थको किसी तरह देख लेते हैं और फिर उस अशुद्ध पदार्थका ध्यान करते हुए भी उस भोजनको छोड नहीं सकते उसे खा ही लेते हैं और फिर उस दोषको दूर करनेके लिए अपने आत्माकी निंदा करते हैं तथा गुरुके वचनानुसार प्रतिक्रमण और आलोचना आदि प्रयश्चित्त करते हैं परंतु जो उस भोजनको छोड सकते हैं, जिनका हृदय शुद्ध है, जो भोजनकी शुद्धिके विधाता हैं भोजनकी शुद्धताका प्रतिपादन करनेवाले हैं, जिन्हें सब से उत्तम वैराग्य प्राप्त हो गया है। अंतरायोंके समूहमें जिनकी बुद्धि कभी नहीं दौडती, शरीर से भी जिनका ममत्व छूट गया है और जो रसोंके ज्ञानसे तथा रागसे भी रहित हैं ऐसे केवली भगवान उन अशुद्ध पदार्थोंका ध्यान करते हुए कभी आहार ग्रहण नहीं कर सकते। इसालिए केवली भगवानके आहार ग्रहण करनेकी विभावना (विडंबना) कभी संभव नहीं हो सकती। अतएव कहना चाहिए कि केवली भगवान अरहंतदेवके सिद्धोंके समान अनंत सुख है इसलिये सिद्धोंके समान ही वे क्षुधाकी वेदनासे रहित हैं।

जीवन्मुक्तिररं चतुष्टयमयी संलक्ष्यते तस्य चे-
च्छर्मानंतमिहेष्यमागममतिप्रागल्भ्यवाचा तदा ।
शर्माष्टावपि भोजनस्य भवताऽभावो विभाव्यो जिने
सातस्यानुपपत्तितोंतरहितस्येद्धस्य तं वै विना ॥

यदि भगवान अरहंतदेवको जीवन मुक्त और अनंत चतुष्टयस्वरूप मानते हो उनके अनंत सुख मानना चाहते हो, शास्त्रोंसे उत्पन्न हुए ज्ञान और प्रगल्भ वचनोंसे उनके आठों प्रातिहार्य स्वीकार करते हो तो उन भगवानके कवलाहारका अभाव ही मानना चाहिये। क्योंकि कवलाहारका अभाव माने विना सदा एकसा रहनेवाला और परमोत्कृष्ट अनंत सुख उनके कभी नहीं बन सकेगा।

क्षुद्बाधारहितत्वं हि जिनस्यानंतशर्मणः । एष्टव्यं भव्यसद्वर्गैः शुभचंद्रैश्चिदावहैः ॥
चैतन्य शक्तिको वा सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले और चंद्रमाके समान निर्मल वा निर्दोष ऐसे भव्य समूहोंको अनंत सुखको धारण करनेवाले जिनेंद्र भगवानके क्षुधाकी बाधाका अभाव ही मानना चाहिये। अथवा सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले शुभचंद्रके समान भव्य समूहोंको अनंत सुखको धारण करनेवाले जिनेंद्र भगवानके क्षुधाकी बाधाका अभाव ही मानना चाहिये ॥

इसप्रकार संशयिवदनविदारण (श्वेतांबरियोंके मतका खंडन करनेवाले) प्रकरणमें यह केवली भगवानको कवलाहारका निषेध करनेवाला पहला उल्लास समाप्त हुआ ॥ १ ॥

स्त्रीमुक्तिनिराकरण।

पूर्वपक्ष—अच्छा भगवान अरहंतदेवके निराहार विशेषण तो ठीक है परन्तु वह मुक्ति पुरुषोंको ही प्राप्त होती है यह बात ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंके भी मोक्ष प्राप्त होनेके सब कारण रहते हैं स्त्रियोंके भी श्रेष्ठ संयम रहता है और मनुष्योंके द्वारा वे बंदनीय होती ही हैं। कदाचित् यह शंका की जाय कि स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि वे पुरुषोंसे हीन होती हैं जैसे नपुंसक। परन्तु इस शंकामें सामान्य स्त्रियां ग्रहण की गई हैं अथवा विवादापन्न खास स्त्रियां? कदाचित् पहिला पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् सामान्य स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्त नहीं होती ऐसा कहा जाय तो फिर पक्षके एक देशमें साध्यकी सिद्धि है ही क्योंकि भोगभूमिकी स्त्रियां, पंचमकालमें उत्पन्न हुई स्त्रियां, तिर्यंचिनी, देवी और अभव्य आदि ऐसी बहुत सी स्त्रियां हैं जिनके लिए मोक्ष प्राप्त होनेका निषेध सबने किया है। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय तो फिर स्त्रियोंका खास विशेषण बतलाना चाहिए। यदि स्त्रियोंका खास विशेषण न दिखलाया जायगा तो मोक्षके योग्य नियत स्त्रियोंके होनेका भी अभाव मानना पडेगा। यदि प्रकरणसे उन नियत स्त्रियोंका लाभ होना मानोगे तो फिर उस प्रकरणसे ही तुम्हारा पक्ष भी नहीं बन सकेगा क्योंकि जिस प्रकार किसी धनुषधारीको कोई खास नियत वेध्य दिखलाई पडता है उसीप्रकार जिसके उसका उपादान कारण नियत है उसीके उसके उपादान कारण की विधि कहनी पडेगी।

अच्छा अब विचार यह करना है कि स्त्रियां किन किन कारणोंसे पुरुषोंसे हीन हैं। क्या सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयके अभावसे स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं? अथवा उनमें विशेष सामर्थ्य नहीं है इसलिए वे हीन हैं? पुरुषोंके द्वारा वे वंदनीय नहीं हैं इसलिए वे पुरुषोंसे हीन हैं अथवा उनमें स्मरण आदिका अभाव है इसलिये वे पुरुषोंसे हीन हैं? उनके वडी वडी ऋद्धियां प्रगट नहीं होतीं इसलिये वे पुरुषोंसे हीन हैं अथवा उनमें मायाचारी बहुत अधिक है इसलिये वे पुरुषोंसे हीन हैं? इन सबमें पहिला हेतु भी ठीक संघटित नहीं होता क्योंकि स्त्रियोंके रत्नत्रयका सद्भाव है। सर्वज्ञदेवके कहे हुए पदार्थोंमें "यह पदार्थ इसी तरह है" इस प्रकारके श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। उन्हीं पदार्थोंके यथार्थ जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं और सर्वज्ञदेवके कहे हुए व्रतोंको यथोक्त रीतिसे आचरण करनेको सम्यक्चारित्र कहते हैं ये तीनों ही स्त्रियोंके सिद्ध होते हैं इसलिये वे स्त्रियोंकेलिए समस्त कर्मोंके नाश होनेरूप मोक्षको सिद्ध करते हैं। स्त्रियोंके रत्नत्रयका सद्भाव माननेमें किसी तरह विरोध नहीं आता जिससे कि वे पुरुषोंसे कुछ हीन गिनी जांय। भावार्थ—वे किसी तरह पुरुषोंसे हीन नहीं मानी जा सकतीं क्योंकि उनके रत्नत्रयका सद्भाव माननेमें किसी तरहका विरोध नहीं आता। कदाचित् यह शंका की जाय कि स्त्रियां रत्नत्रयसे विरुद्ध वा अलग रहती हैं। क्योंकि वे देव आदिकोंके समान पुरुषोंसे भिन्न हैं। यह वात संसारमें प्रसिद्ध है कि देव, नारकी, तिर्यंच और भोगभूमियां मनुष्योंमे भिन्न होनेके कारण देव नारकी आदिके साथ रत्नत्रयका विरोध है। इसी प्रकार स्त्रियोंका स्त्रीपना भी केवल इसी हेतुसे विरोधकी धुराको क्यों धारण नहीं कर सकेगा? परंतु यह शंका भी ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंको पुरुषोंसे भिन्न मान लेनेपर भी रत्नत्रयके पूर्ण

कारणोंका अभाव होनेपर उनमें रत्नत्रयका विरोध प्राप्त हो सकेगा? अच्छा स्त्रियोंमें रत्नत्रयका अभाव किस प्रकार निश्चय किया जाता है प्रत्यक्षसे? अनुमानसे? अथवा आगमसे? उनमें प्रत्यक्षसे रत्नत्रयका अभाव सिद्ध कर नहीं सकते क्योंकि रत्नत्रय इंद्रियगोचर नहीं है। अनुमानसे भी यह बात सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि रत्नत्रयके अभावका अविनाभावी (सदा रत्नत्रयके अभावके ही साथ रहनेवाला) कोई भी हेतु दिखाई नहीं देता। आगमसे भी स्त्रियोंमें रत्नत्रयका अभाव सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि संसारमें ऐसा कोई आगम ही नहीं है जो स्त्रियोंमें रत्नत्रयके अभावको कहनेवाला हो। जिसप्रकार देव, नारकी और तिर्यंचोंके रत्नत्रयके अभावको प्रतिपादन करनेवाले आगमके वाक्य मिलते हैं उसप्रकार स्त्रियोंमें रत्नत्रयके अभावको प्रतिपादन करनेवाले आगमके वचन नहीं मिलते।

कदाचित् यह शंका की जाय कि स्त्रियोंमें रत्नत्रय तो रहा उसका हम निषेध नहीं करते क्योंकि रत्नत्रयके होने मात्रसे ही कुछ मोक्षकी सिद्धि नहीं हो सकती किन्तु जो रत्नत्रय सबसे उत्तम है और सबसे अधिक परिमाणमें होनेके कारण मोक्षका साधक है ऐसा रत्नत्रय स्त्रियोंमें नहीं है इसीलिए स्त्रियोंमें रत्नत्रयका अभाव कहा जाता है परन्तु यह शंका भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष पदार्थोंमें विरोध दिखाई पडता है जो पदार्थ अप्रत्यक्ष हैं उनमें कभी विरोध दिखाई नहीं पड सकता। " यह रत्नत्रय सबसे उत्तम अवस्थाको अथवा सबसे अधिक अवस्थाको प्राप्त हो गया है" यह बात हम लोगोंको कब दिखाई पड सकती है? इसके सिवाय अदृश्य पदार्थोंमें विरोधका प्रतिपादन तो हो ही नहीं सकता? क्योंकि उसमें अतिप्रसंगका दोष आता

है इसी तरह जिसके विरोधका ज्ञान ही नहीं है ऐसे रत्नत्रयका स्त्रियोंमें अभाव भी कहा नहीं जा सकता क्योंकि वहां भी अतिप्रसंगका दोष आता है।

कदाचित् यह शंका की जाय कि स्त्रियोंके वस्त्र आदिका परिग्रह रहता है इसलिए उनके चारित्र नहीं बन सकता सो भी ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंका वह वस्त्र परिग्रह माना ही नहीं जा सकता। स्त्रियोंका वह वस्त्र (साडी) शरीरके साथ संबंध होने मात्रसे ही परिग्रह माना जाता है अथवा वे उसका उपभोग करतीं हैं इसलिए परिग्रह माना जाता है वा ममत्वरूप मूर्छाका कारण होनेसे परिग्रह माना जाता है? कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् शरीरके साथ संबंध होनेमात्रसे ही परिग्रह मान लिया जाय तो पृथ्वी वायु आदिके साथ भी शरीरका संबंध होनेसे व्यभिचार दोष आता है भावार्थ—शरीरके साथ पृथ्वी आदिका संबंध तो होता है परन्तु पृथ्वी आदिको कहीं भी परिग्रह नहीं माना है। यदि परिग्रहके माननेमें यही हेतु माना जाय तो पृथ्वीको भी परिग्रह मानना चाहिए। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् वस्त्रका उपभोग किया जाता है इसलिए वह परिग्रह है ऐसा मान लिया जाय तो फिर इसमें यह प्रश्न होता है कि स्त्रियोंके जो वस्त्रोंका उपभोग (दीक्षित अवस्थामें भी साडी पहननेका विधान) बतलाया गया है वह किस कारणसे बतलाया गया है क्या वे वस्त्रोंका त्याग नहीं कर सकतीं इसलिए बतलाया गया है अथवा भगवान जिनेन्द्रदेवके उपदेशानुसार बतलाया गया है? यदि पहिला पक्ष अर्थात् वे वस्त्रोंका त्याग नहीं कर सकतीं ऐसा मान लिया जाय सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जो स्त्रियां अपने प्राणों तकको भी बडी शीघ्रताके साथ छोडते हुए देखी गई हैं पारमार्थिक आनंदरूपी संपदाकी इच्छा करनेवाली वे स्त्रियां क्या

बाहरी कपडोंका त्याग नहीं कर सकतीं ? यह उनकेलिये कौनसी बडी बात है ? वर्तमानमें भी कितनी साध्वियां नग्न अवस्थामें देखी जाती हैं। कदाचित् दूसरा पक्ष मान लिया जाय सो भी सूक्ष्म नहीं है क्योंकि भगवानने यह उपदेश दिया ही है कि मोक्षकी इच्छारूपी बरूनीसे ढके हुए नेत्रोंवाली साध्वियोंके लिए जो जो संयमके उपकार करनेवाले हैं ऐसे वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण गिने जाते हैं। लिखा भी है " णो कप्पदि लिंगथीए अचेलाए होंताए " स्त्रियोंका अचेल लिंग नहीं कहा है इसप्रकार पीछी कमंडलुके समान शास्त्रोंमें वस्त्रको भी धर्मोपकरण कहा है इसलिये वस्त्र परिग्रह नहीं है यदि वस्त्रोंको भी परिग्रह मान लिया जायगा तो फिर कमंडलुको भी परिग्रह मानना पडेगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिससे संयमका उपकार होता है उसे उपकरण कहते हैं। क्योंकि वह धर्मका साधन है इससे जो भिन्न होता है उसे आधिकरण कहते हैं। ऐसा भगवानने कहा है—जो उपकारक होता है उसे करण अथवा उपकरण कहते हैं जिसमें प्राणियोंकी रक्षाके लिये प्रयत्न किया जाता है उसे अधिकरण कहते हैं। पीछीसे संयम की प्रतिपालना होती है इसीलिये उसे उपकरण कहते हैं। कदाचित् यह शंका की जाय कि वस्त्रको क्यों उपकरण माना है तो इसका उत्तर यही है कि हम तो उसे भी संयमका ही उपकरण कहते हैं। यदि सूत्रोंमें कहे हुए धर्मके कारण ऐसे ऐसे वस्त्रोंको भी परिग्रह माना जायगा तो फिर आहार औषध और शय्या आदिको भी वस्त्रोंके समान परिग्रह मानना पडेगा और इस तरह जो जो मोक्षके कारण हैं उन सबसे मोक्षका अभाव ही मानना पडेगा। दूसरी बात यह है कि जिसप्रकार नग्न रहनेवाली घोडियोंको घोडे सताया करते हैं उसीप्रकार यदि स्त्रियां नग्न रहेंगी तो उनके खुले अंग उपांगोंको देखकर जिनके हृदयमें विकार उत्पन्न हो गया है ऐसे मनुष्य उनको सतायेंगे क्योंकि स्त्रियां दुर्बल हुआ ही करती हैं।

कदाचित् यह शंका की जाय कि जिन स्त्रियोंका पराक्रम अत्यंत तुच्छ है, प्राणीमात्र जिनका पराभव कर सकते हैं वे स्त्रियां समस्त तीनों लोकोंको वशमें करनेवाले कर्मोंके समूहों को क्षय करनेसे जो प्राप्त होता है और बडी सामर्थ्यको धारण करनेवाले प्राणी ही जिसे सिद्ध कर सकते हैं ऐसे मोक्षको किस प्रकार सिद्ध कर सकेंगी ? परंतु यह शंका करना केवल मनको प्रसन्न कर लेना है क्योंकि यह शंका कुछ विचारपूर्वक नहीं की गई है इसका भी कारण यह है कि यह कुछ नियम नहीं है कि जिसके शरीरकी सामर्थ्य अधिक हो वही मोक्षके मार्गका उपार्जन कर सके ? निर्बल न कर सके यदि ऐसा न माना जायगा तो वामन (छोटे कदके आदमी) बहरे, लंगडे और अत्यंत रोगी मनुष्य भी स्त्रियोंके द्वारा तिरस्कृत किए जाते हैं परन्तु कम सामर्थ्यवाले होकर भी वे उस मोक्षको प्राप्त होनेके कारणभूत बलको धारण करते ही हैं। इसलिए जिसप्रकार सामर्थ्य न होनेपर भी ऐसे मनुष्योंके लिए मोक्षके साधनमें कोई विरोध नहीं आता उसीप्रकार स्त्रियोंके लिए भी मोक्षके साधनमें कोई विरोध नहीं आना चाहिये।

कदाचित् यह शंका करो कि वस्त्रसहित होनेपर भी स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्त हो जाता है तो फिर वह मोक्ष गृहस्थोंको क्यों प्राप्त नहीं होता ? सो भी ठीक नहीं है क्योंकि गृहस्थोंके ममत्व की सत्ता रहती है कोई भी गृहस्थ अपने वस्त्रोंमें ममत्व न रखता हो ऐसा नहीं है। इसीको उपाधि वा परिग्रह कहते हैं। उस उपाधिके रहनेसे नग्न रहनेवाला पुरुष भी परिग्रहवाला गिना जाता है क्योंकि कमसे कम वह अपने शरीरसे तो ममत्व रखता है। तथा अर्जिकाओंके वह ममत्व रहता नहीं इसालिए उपसर्ग आदिके द्वारा डाले हुएके समान अर्जिकाओंका वह वस्त्र कभी परिग्रह नहीं गिना जा सकता। जो संयमी मुनि आहार आदिके लिए गांव घर वा वनमें

निवास करते हैं उनके ममत्व न होनेके ही कारण उन्हें कोई परिग्रहवाला नहीं मानता । कदाचित् यह शंका की जाय कि संयमको धारण करनेवाली महात्मा अर्जिकाओंके किसी समय मूर्छा वा ममत्व बुद्धि हो आती है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि मोक्षरूपी लक्ष्मीमें उत्पन्न हुए परम प्रेम और तीव्र स्पृहाको धारण करनेवालीं अर्जिकाओंके वह मूर्छा किसप्रकार हो सकती है ? शास्त्रोंमें भी लिखा है कि संसारके किसी भी भागमें, भोग वा रोगमें, निर्जन व मनुष्यों की वस्तीमें तथा सज्जन वा दुर्जनमें अर्जिकाओंका हृदय कभी किसी प्रकारकी भी विषम मुद्रा को धारण नहीं करता है । लिखा भी है—'अवि अप्पणो विदेहं मिनायइंति मामाइयंतीति'

कदाचित् यह शंका करो कि वस्त्रोंमें जूं आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए उनकी हिंसा होना अनिवार्य है । हिंसा होनेसे चारित्रका भी अभाव मानना ही पडेगा इसलिय चारित्रका अभाव होनेसे स्त्रियोंके मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती परंतु यह शंका भी ठीक नहीं है क्योंकि मद अथवा प्रमादका अभाव होनेसे चारित्रका अभाव सिद्ध ही नहीं हो सकेगा । इस का भी कारण यह है कि मद और प्रमादका नाम ही हिंसा है । शास्त्रोंमें भी लिखा है 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' अर्थात्—'प्रमादके योगसे प्राणोंका व्यपरोपण होना हिंसा है ।' यदि हिंसामें प्रधान कारण प्रमाद न माना जायगा तो आहार औषध और शय्या आदिके ग्रहण करते समय मुनियोंको भी हिंसक मानना पडेगा । जिसप्रकार भगवान जिनेन्द्र देवके कहे हुए यत्नाचारोंकी प्रवृत्ति करते हुए मुनियोंके प्रमादका अभाव होनेसे अहिंसकपना सिद्ध होता है उसीप्रकार अर्जिकाओंके भी प्रमादका अभाव होनेसे अहिंसकपना सिद्ध होता है क्यों कि प्रमादका अभाव होनेपर मुनि और अर्जिकामें कोई अंतर नहीं रहता । लिखा भी है—

" जियदु य मरदु य जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि दोसो हिंसामित्तेण समिदस्स ॥" इति ।

अर्थात्—' जो अयत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करता है उसके हाथसे जीव मरो वा जीवित रहो उसे हिंसा अवश्य लगती है और जो यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करता है समितियोंका पालन करता है उसके केवल हिंसा होनेमात्रसे ही दोष नहीं लगता । ' जो लोग मूर्छाके होनेसे ही वस्त्रादि का सद्भाव मानते हैं उनके पक्षका खंडन भी इसी ऊपर लिखे गाथासे हो जाता है क्योंकि जिसप्रकार मूर्छारूप कारणके अभाव होनेसे किसी आर्जिकाका शरीर परिग्रह नहीं गिना जाता उसीप्रकार मूर्छारूप कारणके अभाव होनेसे किसी आर्जिकाके वस्त्र भी परिग्रह नहिं गिने जा सकते । इसप्रकार यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयके अभावसे स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं यह बात बिल्कुल असंभव है ।

कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् स्त्रियोंमें विशेष सामर्थ्य नहीं है इसलिए वे पुरुषोंसे हीन हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंमें विशेष सामर्थ्यका अभाव नहीं है स्त्रियां सातवें नरकमें नहीं जा सकतीं इसलिए उनमें विशेष सामर्थ्यका अभाव है ? अथवा वाद आदि लब्धियोंका उनमें अभाव है इसलिए वे पुरुषोंसे कम हैं । स्त्रियोंके पूर्ण श्रुतज्ञान नहीं होता इसलिये वे पुरुषोंसे हीन हैं अथवा वे तपश्चरणादिका पूर्ण अनुष्ठान नहीं कर सकतीं इसलिए वे पुरुषोंसे हीन हैं । कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार किया जाय तो इसमें प्रश्न यह होता है कि स्त्रियोंके जिस जन्ममें (जिस स्त्री पर्यायमें) सातवें नरकमें जानेका अभाव है उसी जन्ममें स्त्रियोंके मोक्ष जानेका निषेध है ? अथवा यह वाक्य साधारण है सब स्त्रियोंके लिए है ? कदाचित् पहिला पक्ष

स्वीकार किया जाय अर्थात् यह मान लिया जाय कि जिस जन्ममें सातवें नरकमें जानेका निषेध है उसी जन्ममें मोक्ष जानेका निषेध है तो फिर चरमशरीरियोंमें व्यभिचार आता है क्योंकि चरमशरीरियोंने जो जन्म लिया है उसमें सातवें नरक जानेका निषेध है इसलिए उस जन्ममें मोक्ष जानेका भी निषेध होना चाहिए परंतु चरमशरीरी तो मोक्ष जाते ही हैं इसलिए स्त्रियां भी मोक्ष जानी चाहिए। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार कर लिया जाय अर्थात् यह कथन सर्व साधारण स्त्रियोंके लिए मान लिया जाय तो फिर इसमें यह विचार करना चाहिये कि स्त्रियोंको सातवें नरकमें गमन करनेसे रोकनेवाले स्त्रियोंके व्रतोंमें इतने अशुभ परिणामों की सामर्थ्य न होनेसे उनका अपकर्ष गिना जाता है तो फिर मोक्षके जाने योग्य अत्यंत शुभ परिणामोंकी सामर्थ्य न होनेसे उनका अपकर्ष क्यों न गिना जाय तथा प्रसन्नचंद्रराजर्षि आदि चरमशरीरियोंमें दोनों जगह जाने तककी सामर्थ्य होनेसे एक जगह भी अपकर्ष नहीं है परंतु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंके अविनाभावका अभाव है, और दोनोंमें ही निश्चित व्यभिचारका दोष आता है। यह बात कभी नहीं बन सकती कि जिसके उत्कृष्ट अशुभ गतिके उपार्जन करनेकी सामर्थ्यका अभाव है उसके उत्कृष्ट शुभ गतिके उपार्जन करने की भी शक्ति न हो। यदि ऐसा मान लिया जायगा तो फिर यह भी कहना पडेगा कि जिसके उत्कृष्ट शुभ गतिके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य नहीं है उसके उत्कृष्ट अशुभ गतिके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य भी नहीं हो सकती और इस हिसाबसे अभव्योंमें जब उत्कृष्ट शुभ गतिके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य नहीं है तो उनके उत्कृष्ट अशुभ गतिके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य भी नहीं होनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि "स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि वे

सातवें नरकमें जानेकी सामर्थ्य नहीं रखतीं संमूर्च्छन जीवोंके समान' यह अनुमान भी ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनोंकी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं बनती। सातवें नरकमें जानेके अभावके साथ मोक्षके अभावकी व्याप्ति नहीं बनती कारण संसारमें ऐसा नियम देखा जाता है कि जिस का जहांपर नियम होता है उसके विपरीत पदार्थके साथ उसके विपक्षकी व्याप्ति रहती है। जैसे अग्निके साथ धूमकी व्याप्ति है। इसलिए धूमके अभावके साथ अग्निके अभावकी व्याप्ति रहेगी। अथवा शीशमके वृक्षके साथ वृक्षपनेकी व्याप्ति है इसलिए वृक्षपनेके अभावके साथ शीशमके वृक्षके अभावकी व्याप्ति रहेगी। परंतु यहांपर स्त्रियोंको मुक्तिका अभाव सिद्ध करने-वाले अनुमानमें विपर्यय वा व्यतिरेक व्याप्ति सिद्ध नहीं होती। उस व्यतिरेक व्याप्तिके अभाव होनेका कारण यह है कि सातवें नरकमें जाना आदि मोक्षके प्रति कारण नहीं है क्योंकि वह व्यापक नहीं हैं। जिसप्रकार रत्नत्रय मोक्षका कारण है अथवा आठ गुण मोक्षके कारण हैं। उसीप्रकार सातवें नरकमें जाना मोक्षका कारण नहीं है और न रत्नत्रय अथवा आठ गुणोंके समान सातवें नरकमें जाना व्यापक ही है जिससे कि यह कहा जासके कि उसका अभाव होने से इसका अभाव है अर्थात् सातवें नरकमें जानेका अभाव होनेसे मोक्षका अभाव है।

अकारणरूप अव्यापकका अभाव होनेसे अकार्यरूप अव्याप्यका भी अभाव नहीं होता यदि ऐसा न माना जायगा तो अति प्रसंगका दोष आवेगा इसलिए यह हेतु संदिग्धविपक्ष-व्यावृत्तिक है। तथा चरमशरीरी जीवोंके साथ निश्चित व्यभिचारी है[1]। इसके सिवाय एक

१ भावार्थ—चरमशरीर सातवें नरकमें नहीं जाते इसलिए वे मोक्षमें भी नहीं जाने चाहिए परन्तु जाते तो हैं इसलिए मोक्षमें जानेके निषेधमें दिया हुआ सातवें नरकमें जानेका अभावरूप हेतु व्यभिचारी है।

वात यह है कि नीचेके साथ ऊपरकी तुलना करना विषम है, बन नहीं सकती क्योंकि तिर्यंच ऊपर तो सहस्रार स्वर्ग तक जाते हैं परन्तु यह उनका ऊपरकी और कम जाना अधोगतिमें कमीका कारण नहीं है। अधोगतिमें स्त्री पुरुषोंकी सामर्थ्य समान नहीं है इसलिये शुभ गतिमें भी उनकी सामर्थ्य समान नहीं है यह कहना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि अशुभ परिणाम शुभ परिणामोंके लिए कारण नहीं हैं। यही वात आगे स्पष्ट रीतिसे दिखलाते हैं। असेनी, सेनी, भुजग, पक्षी, सर्प, चौपाए, स्त्री और जलचर ये अनुक्रमसे सातों नरकोंमें उत्पन्न होते हैं अर्थात् असेनी पहिले नरकमें उत्पन्न होते हैं सेनी भुजग दूसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं पक्षी तीसरे नरकमें, सर्प चौथेमें, चौपाये जानवर पांचवेमें, स्त्री छठेमें और जलचर जीव सातवें नरकमें उत्पन्न होते हैं। यह तिर्यंचोंके अधोभूमिमें उत्पन्न होनेका अनुक्रम है परन्तु स्वर्गकी गति सबकी समान है स्वर्गमें इन सबकी गति सहस्रार स्वर्ग तक ही संभव हो सकती है। (इसलिए यह किसी तरहसे सिद्ध नहीं हो सकता कि स्त्रियां सातवें नरकमें नहीं जातीं इसलिए उनमें विशेष सामर्थ्यका अभाव है और इसी कारण वे मोक्ष नहीं जा सकतीं।)

कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् यह कहा जाय कि स्त्रियोंमें वाद आदि लब्धियां नहीं होतीं इसलिये उनमें विशेष सामर्थ्य भी नहीं होती। और जिन स्त्रियोंमें इसलोक संबंधी वाद लब्धि विक्रिया लब्धि और चारण आदि लब्धियोंको प्रगट करनेवाला विशेष संयम नहीं हो सकता उन स्त्रियोंमें मोक्ष देनेवाला सर्वोत्तम संयम हो जायगा? इस बात पर भला कौन बुद्धिमान विश्वास करेगा? परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार कहनेमें भी व्यभिचार आता है। देखो भाषतुष[1] आदि मुनियोंके वाद आदि लब्धियोंको प्रगट करने-

१। यह किसी मुनिका नाम है।

वाले विशेष रूप संयमकी सामर्थ्य नहीं थी परन्तु उनके मोक्ष प्राप्त करनेवाले संयमकी सामर्थ्य थी। इसके सिवाय एक बात यह है कि शास्त्रोंमें यह नहीं लिखा है कि लब्धियां सब विशेष संयमसे ही प्रगट होती हैं किन्तु कर्मोंका उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम आदि कारणोंसे लब्धियां प्रगट होती हैं ऐसा शास्त्रोंमें कहा है। देखो शास्त्रोंमें लिखा है–

> उदयखयखओवसमोवसमसमुत्था बहुप्पगाराओ।
> एवं परिणामवसालद्धीओ हवंति जीवाणं ॥ ”

अर्थात् “ जीवोंके अनेक प्रकारकी लब्धियां कर्मोंके उदय क्षय क्षयोपशम और उपशमसे प्रगट होती हैं इस तरह जीवोंके परिणामोंके संबंधसे ही लब्धियां प्रगट होती हैं। चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव आदि पदकी प्राप्ति होना भी लब्धियां हैं परन्तु ये लब्धियां संयमके होने हीसे नहीं होती हैं। कदाचित् किसी तरहसे मान भी लिया जाय कि लब्धियां संयमसे ही प्रगट होती हैं तथापि उन स्त्रियोंके सब लब्धियोंका अभाव मानते हो? अथवा थोडी सी खास नियमित लब्धियोंका अभाव मानते हो? इन दो पक्षोंमें से पहिला पक्ष मानना तो ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंके चक्रवर्ती आदि थोडी सी नियमित लब्धियोंका ही निषेध किया है, आमर्ष औषधि आदि बहुतसी ऐसी लब्धियां हैं जो कि स्त्रियोंके हो सकती हैं। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् उनके थोडीसी नियमित लब्धियोंका अभाव स्वीकार करो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें भी व्यभिचार आता है। मनुष्योंमें वाद आदि समस्त लब्धियोंका अभाव होने पर भी उनमें (मोक्ष प्राप्त करने योग्य) विशेष शक्ति स्वीकार करते हो। बहुतसी नियत लब्धियां ऐसी हैं जो केवल केशव पदसे रहित लोगोंको ही प्राप्त होती हैं अथवा जिन्हें तीर्थंकर

के विना चक्रवर्तीका पद प्राप्त हुआ है उन्हें प्राप्त होती हैं। [इसलिए लब्धियोंका अभाव होने से स्त्रियां पुरुषोंसे हीन नहीं कही जा सकतीं]

कदाचित् यह कहा जाय कि स्त्रियोंमें पूर्ण श्रुतज्ञान नहीं होता इसलिए उनमें विशेष सामर्थ्य नहीं है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यह हेतु अनैकांतिक है माषतुष और यम आदि ऐसे बहुतसे मुनि हो गए हैं जिनके पूर्ण श्रुतज्ञान नहीं था परन्तु तो भी उन्हें मोक्ष प्राप्त हो गया था इसलिए यह हेतु भी साध्यको सिद्ध नहीं कर सकता।

कदाचित् यह कहो कि स्त्रियां तपश्चरणादिका पूर्ण अनुष्ठान नहीं कर सकतीं इसलिए वे पुरुषोंसे कम हैं सो भी ठीक नहीं है। क्योंकि इसका तो निषेध किया है ' स्त्रियोंमें विशेष सामर्थ्यका अभाव है ' यह बात तो विश्वास योग्य ही नहीं है। दूसरी बात यह है कि शास्त्रोंमें योग्यताकी अपेक्षा आलोचनाका उपदेश अनेक प्रकारसे दिया गया है। शास्त्रोंमें लिखा है कि जिसप्रकार वैद्यक शास्त्रोंमें रोगकी चिकित्साकी विधि अनेक प्रकारसे कही गई है और उनमें से कोई विधि किसीको उपकार करती है और कोई विधि किसीको उपकार करती है उसीप्रकार तपश्चरणकी विधि भी अनेक प्रकार है कोई संवररूप है और कोई निर्जरारूप है इनमेंसे कोई किसीको उपकारी होती है और कोई किसीको। (इसप्रकार पूर्ण अनुष्ठान नहीं कर सकतीं इसलिए स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं यह हेतु भी ठीक नहीं ठहरा)

कदाचित् यह कहो कि स्त्रियां पुरुषोंके द्वारा वंदना करने योग्य नहीं होतीं इसलिए वे पुरुषोंसे हीन हैं सो भी ठीक नहीं हैं क्योंकि यह कथन सामन्य पुरुषोंकी अपेक्षासे है अथवा अधिक गुणवाले पुरुषोंकी अपेक्षासे अर्थात् सामन्य लोग स्त्रियोंको वंदना नहीं करते अथवा

अधिक गुणवाले पुरुष स्त्रियोंको बंदना नहीं करते ? कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार किया जाय तो अहा बडा ही साहसका काम है क्योंकि यह काम असिद्धतारूपी अताड्य (जो किसीके द्वारा ताडित न हो सके) और बडे भारी आडंबरसे दंडित किया हुआ है। अरे तीर्थंकरकी माता आदि इंद्रोंके द्वारा भी नमस्कारकी जाती हैं फिर भला बाकी पुरुषोंके द्वारा नस्कार करनेकी तो बात ही क्या है ? कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय सो भी ठीक नहीं है क्योंकि गुरु लोग भी अपने विद्यार्थियोंको कभी नमस्कार नहीं करते इसलिये गुरुकी अपेक्षा हीन होनेसे उन विद्यार्थियों-को भी कभी मोक्ष प्राप्त नहीं होना चाहिए। परन्तु यह बात वास्तविक नहीं है क्योंकि चंद्ररुद्र आदि अनेक शिष्योंको मोक्षकी प्राप्ति हुई है ऐसा शास्त्रोंमें सुना जाता है इसप्रकार तुम्हारे मूल हेतुमें ही व्यभिचार आता है।

इसी कथनसे स्मरणादिके अकर्तृत्वका भी निषेध समझना चाहिये। (भावार्थ—पुरुष लोग स्त्रियोंका स्मरण नहीं करते इससे स्त्रियां हीन हैं यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार इंद्रादिक भी स्त्रियोंको नमस्कार करते हैं उसीप्रकार वे उनका स्मरण भी करते हैं) परंतु यहां पुरुषोंके द्वारा स्मरण करनेका निषेध नहीं है सामान्य पुरुष स्त्री सबके द्वारा स्मरण करनेका निषेध है। कदाचित् यह कहा जाय कि पुरुष तो कभी भी स्त्रियोंका स्मरण नहीं करते हैं इस लिए यह हेतु अनेकांत है। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि ऐसा मानते हो तो पुरुष स्त्रियोंका स्मरण नहीं करते ऐसा साफ लिखना चाहिए। स्त्रियोंका स्मरण किया ही नहीं जाता, ऐसा सामान्य लिखनेसे इसका निषेध नहीं होता। कदाचित् 'पुरुष तो स्त्रियोंका स्मरण कभी नहीं करते' ऐसा स्पष्ट लिखो तो भी तुम्हारा हेतु असिद्ध है। क्योंकि कोई कोई स्त्रियां ऐसी भी हैं

कि जिनके शरीरकी सातों धातु आगमके रहस्यके पारंगत (सर्वोत्कृष्ट) ज्ञानसे सुवासित हैं। यदि ऐसी स्त्रियोंका उच्छृंखल ज्ञानके पराधीन होनेवाले साधु लोग स्मरण करें तो कोई विरोध नहीं आता। अर्थात् ऐसी स्त्रियोंका ऐसे साधु स्मरण करते ही हैं इसलिये इसप्रकार भी स्त्रियों में हीनता नहीं है।

कदाचित् यह कहा जाय कि स्त्रियोंके बडी २ ऋद्धियां नहीं होतीं इसलिए स्त्रियां पुरुषों से हीन हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि बडी २ ऋद्धियोंका अभिप्राय आध्यात्मिकी ऋद्धियोंसे है? अथवा बाह्य ऋद्धियोंसे है? कदाचित् पहला पक्ष स्वीकार करो सो भी ठीक नहीं है क्यों कि सम्यग्दर्शन आदिक आध्यात्मिक ऋद्धियां स्त्रियोंके रहती ही हैं तथा बाह्य ऋद्धियोंसे उनका अपकर्ष हो नहीं सकता क्योंकि यदि बाह्य ऋद्धियोंसे ही हीनता मानी जायगी तो तीर्थंकरकी बडी भारी विभूतिके कारण गणधर भी हीन गिने जांयगे और चक्रवर्तीकी विभूतिके कारण अन्य क्षत्रिय हीन समझने चाहिये। फिर वे सब भी मोक्षके पात्र नहीं होने चाहिये। क्योंकि वे बाह्य ऋद्धियोंसे हीन हैं इसलिये उनके भी मोक्षका अभाव होना ही चाहिये। कदाचित् यह शंका करो कि तीर्थंकर नाम कर्मके उदयसे होनेवाली बडी भारी ऋद्धियां केवल पुरुषोंमें ही होती हैं वे ऋद्धियां स्त्रियोंमें नहीं होतीं इसलिये स्त्रियां ऋद्धियोंसे रहित गिनी जाती हैं परन्तु यह हेतु भी असिद्ध है क्योंकि जो स्त्रियां अतिशय पुण्यकर्मके फल भोगनेकी पात्र हैं उनके साथ तीर्थंकर नाम कर्मके उदयका कोई विरोध नहीं आता क्योंकि पुण्यवती स्त्रियोंके साथ तीर्थंकर नामकर्मके उदयके विरोधको सिद्ध करनेवाला कोई भी प्रमाण सिद्ध नहीं हो सकता और यह बात तो अभी विवादापन्न है इसकेलिए तो किसी दूसरे अनुमान

की आवश्यकता है सो है नहीं। (इसलिए ऋद्धियोंके न होनेसे स्त्रियां हीन हैं, यह बात बन ही नहीं सकती।)

कदाचित् यह कहा जाय कि स्त्रियोंमें माया अधिक होती है इसलिये वे हीन हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि मायाचारकी प्रकर्षता स्त्री पुरुष दोनोंमें समान देखी जाती है और शास्त्रोंमें भी इसीप्रकार सुनते हैं। शास्त्रोंमें सुना जाता है कि चरमशरीरी नारद आदिके भी माया बहुत ही अधिक थी इसलिए स्त्रियां पुरुषोंसे किसी अंशमें कम नहीं हैं और इसीलिए मुक्तिके निषधको सिद्ध करनेवाला यह हेतु भी सद्धेतु नहीं है। मायाचारी करनेमें मोहनीय कर्मका उदय ही कारण पडता है और मोहनीय कर्मका उदय स्त्री पुरुष दोनोंमें समान होता है।

कदाचित् यह कहा जाय कि इंद्रिय ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष स्त्रियोंमें नहीं होता क्योंकि वह परम प्रकर्ष है जिसप्रकार स्त्रियोंमें सातवें नरकमें जानेका कारण ऐसे पाप कर्मका परम प्रकर्ष नहीं होता उसीप्रकार ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष भी नहीं होता है। परंतु ऐसी शंका करना या यह कहना भी व्यर्थ है क्योंकि यह हेतु मोहनीय कर्मकी स्थितिकी परम प्रकर्षताके साथ और स्त्रीवेद आदिकी परम प्रकर्षताके साथ व्यभिचारी है। भावार्थ—मोहनीयकी स्थितिकी परम प्रकर्षता और वेदकर्मके उदयकी परम प्रकर्षता न होने पर भी जिसप्रकार चरमशरीरी मुक्त होते हैं उसीप्रकार इंद्रियज्ञानकी परम प्रकर्षता न होनेपर भी स्त्रियां मुक्त हो सकतीं हैं।

कदाचित् यह कहो कि वे कम बलवान होतीं हैं इसलिए वे मुक्त नहीं हो सकतीं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जो बल तपश्चरण शीलका धारण करना आदि जो मोक्षका कारण है वह सब स्त्रियोंमें विद्यमान है। अरे गृहस्थ धर्ममें भी सीता आदिक शील पालन करनेके कारण

संसारमें बडी बलशालिनी प्रसिद्ध हैं फिर भला वे तपश्चरण करनेमें शीलरहित और बलरहित किसप्रकार गिनी जांयगी ?

कदाचित् यह शंका करो कि स्त्रियां मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकतीं क्योंकि वे गृहस्थोंके समान परिग्रहसहित रहतीं हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उनके वस्त्र तो धर्मोपकरण हैं इसःलिये वे परिग्रहमें शामिल नहीं हैं। यह बात पहले भी सिद्ध कर चुके हैं। इसलिये मोक्षके पूर्ण कारण प्राप्त हो जानेसे पुरुषोंके समान मनुष्य गतिकी कोई कोई स्त्रियां भी मुक्त हो जाती हैं यह कथन बहुत ही सत्य और उत्तम है। मोक्षका कारण रत्नत्रय है और वह उन स्त्रियोंमें विद्यमान है इसलिए यह हेतु किसी तरहसे भी असिद्ध नहीं है। तथा यह हेतु विपक्षीभूत नपुंसक आदिमें कभी विद्यमान नहीं रहता इसलिए विरुद्धके संबंधसे अमनोहर भी नहीं है अर्थात् विरुद्ध भी नहीं है इसीतरह यह मनुष्य गतिकी स्त्री जाति मुक्तिके पूर्ण कारणोंको पालन करनेवाली किसी खास व्यक्तिके द्वारा अर्थात् किसी खास स्त्रीके द्वारा मनुष्योंके समान ही मोक्ष प्राप्त करानेवाली दीक्षा धारण करनेका अधिकार रखती है इसलिए यह हेतु अनैकांतिक भी नहीं है। स्त्री जाति दीक्षा धारण करनेका अधिकार रखती है यह बात असिद्ध नहीं है क्योंकि "गुव्विणी बालवच्छाय पव्वावेउंण कप्पइ" अर्थात् गर्भिणी, बालबच्चेवाली और दीक्षाकी वेदनासे डरनेवाली स्त्रियोंको दीक्षा नहीं देनी चाहिये। इस कथनमें स्त्रियोंको दीक्षा देनेका विधान प्रतिपादन किया ही है। तथा वर्तमान समयमें अपने मस्तकका लोंच करनेवाली, पीछी धारण करनेवाली और कमंडलु लेकर मुनियोंका चिन्ह धारण करनेवाली अनेक अर्जिकाएं दिखलाई

पडतीं हैं इसलिए स्त्रियोंको दीक्षा धारण करनेका अधिकार नहीं है यह बात किसी तरह नहीं बन सकती। इसतरह दोनों प्रकारसे सिद्ध हुए सिद्धांतसे स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति सिद्ध होती ही है।

अट्ठसयमेगसमये पुरिसाणं णिव्वुदी समक्खादो।
थीलिंगेण य वीसं सेसा दस किंत्ति बोधव्वा ॥ इति ॥

अर्थात्—एक समयमें मोक्ष जानेवाले पुरुषोंकी संख्या एक सौ आठ, स्त्रीलिंगसे मोक्ष जानेवालोंकी संख्या बीस और बाकीकी दस समझना चाहिये। इससे भी स्त्रियोंको मोक्ष की प्राप्ति सिद्ध होती ही है। कदाचित् यह शंका करो कि यहां पर स्त्री शब्दसे स्त्रीवेदका ग्रहण किया जाता है इस रीतिसे भी स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्त होनेका निषेध ही सिद्ध हुआ सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार स्त्रीवेदसे पुरुषोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है उसीप्रकार उसी स्त्रीवेद से स्त्रियोंको भी मोक्षकी प्राप्ति होनी चाहिए। क्योंकि मोक्षका कारण भावोंमें ही रहना है दूसरी बात यह है कि जिसप्रकार द्रव्यसे पुरुष होकर तथा भावसे स्त्रीरूप होकर यह जीव मुक्त हो जाता है उसीप्रकार द्रव्यसे स्त्री होकर और भावसे पुरुष होकर भी यह जीव क्यों नहीं मुक्त हो सकता? क्योंकि दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है दोनों समान हैं तथा सिद्ध होनेवाले मोक्ष प्राप्त करनेवाले आत्माके वेद रहता ही नहीं है क्योंकि वह तो अनिवृत्तिवादरसांपराय नामके नौवें गुणस्थानमें ही नष्ट हो जाता है। कदाचित् यह कहो कि भूतपूर्वगतिकी अपेक्षासे जिस वेदसे यह जीव क्षपकश्रेणीका आरोहण करता है उसी वेदसे मुक्त होता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इस उपचारसे क्या लाभ है। स्त्री पुरुष तो सब जगह समान हैं फिर जिसप्रकार पुरुष मुक्त होते हैं उसीप्रकार स्तन और योनि आदि धर्मोंको धारण करनेवालीं स्त्रियां भी मुक्त हो

सकती है इसमें कोई आपत्ति नहीं है। (यहां तक पूर्वपक्षका समर्थन किया गया।)

उत्तर पक्ष।

अब आगे इस सबका समाधान करते हैं—स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती इसविषयमें सामान्य स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती ऐसा कहनेसे भोगभूमिकी नारियां, पंचमकालमें उत्पन्न हुई स्त्रियां, तिर्यंचिणी, देवी और अभव्य नारियोंको मोक्षकी प्राप्तिका अभाव तो दोनों को सम्मत है ही। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार करो तो उसमें आपने न्यूनताका पक्ष स्वीकार किया है परन्तु वह युक्तिशून्य है क्योंकि 'विवादास्पदीभूत' इस विशेषणके विना भी उसकी (साध्यकी) प्राप्ति हो जाती है। इसका भी कारण यह है कि जो पदार्थ अनुपलब्ध है अथवा जिसका निर्णय हो चुका है ऐसे पदार्थोंके सिद्ध करनेके लिए अनुमानकी प्रवृत्ति नहीं होती किंतु जो पदार्थ संदिग्ध है जिसके वारेमें कुछ संदह है ऐसे पदार्थोंको सिद्ध करनेके लिए अनुमान किया जाता है।

शास्त्रोंमें लिखा भी है "संदिग्ध, विपर्यस्त, और अव्युत्पन्न पदार्थोंका साध्यपना (सिद्ध करनेके योग्य) सिद्ध करनेके लिये असिद्ध पद दिया गया है। इसके सिवाय तुमने यह जो कहा है कि अदृष्टका विरोध बन नहीं सकता सो प्रत्यक्षसे तो अदृष्टका विरोध नहीं बन सकता परंतु अनुमानसे भी उसका विरोध सिद्ध नहीं होता यह बात ठीक नहीं है यदि अनुमानसे भी विरोधकी सिद्धि न हो तो फिर सातवें नरकमें जानेके कारणभूत पाप कर्मके परम प्रकर्षका भी विरोध होना चाहिये।

इसके सिवाय जो तुमने यह कहा है कि स्त्रियोंके रत्नत्रयका अभाव नहीं है क्योंकि

वस्त्रोंको परिग्रहरूप ग्रहण करनेसे चारित्रका अभाव होता नहीं यदि वस्त्रोंके सेवनमात्रसे
चारित्रका अभाव माना जायगा तो फिर निर्ग्रंथ साधुओंके भी पृथ्वीका संबंध होनेसे चारित्र
का अभाव मानना चाहिये इत्यादि तीन पक्षोंकी कल्पना की थी सो भी मिथ्या वादलोंके
समान झूठी कल्पना है क्योंकि पृथ्वी आदिकमें अपना कोई संबंध न होनेसे ममत्व नहीं होता
और ममत्व नहीं होनेसे वह कभी परिग्रह नहीं गिना जासकता। अन्यथा यदि इसी तरहसे
परिग्रह मान लिया जायगा तो हर कोई इस संपूर्ण समस्त लोकाकाशका स्वामी बन जासकता
है। परंतु वस्त्रोंमें ऐसा नहीं है क्योंकि यदि वस्त्र गिर जाता है तो उसे बुद्धिपूर्वक हाथसे खींच
कर स्त्री आदिके शरीरमें पहना देते हैं फिर भला ऐसी हालतमें उस पहनानेवालेको मूर्छा-
रहित कौन बुद्धिमान मान सकता है। यदि ऐसे मनुष्यको ही परिग्रहरहित मान लिया जाय
तो फिर नव यौवन, घनस्तनी और सुंदर जघनोंवाली स्त्रीको आलिंगन करनेवालेको भी
परिग्रहरहित मान लेना चाहिये। इसलिये वस्त्रोंके ग्रहण करनेमें वाह्य आभ्यंतर दोनों प्रका-
रके परिग्रहोंका सद्भाव मानना पडता है। तथा दोनों प्रकारके परिग्रहका सद्भाव होनेसे दोनों
प्रकारके निर्ग्रंथपनेका विरोध आता है। इसलिये वस्त्रसहित होनेसे अर्जिकाओंमें मूर्च्छापने
का अभाव कभी सिद्ध नहीं हो सकता। कदाचित् यह कहो कि वस्त्रके सिवाय समस्त परिग्र-
होंका त्याग होने पर भी अर्जिकाओंके वाह्य परिग्रह माना जाता है तो फिर लोभ कषायके
सिवाय अन्य समस्त कषायोंके पूर्णतया नाश होनेपर भी मुनियोंके भी आभ्यंतर परिग्रह
मानना चाहिये परंतु यह वात नहीं है क्योंकि ऐसा मानलेने पर भी आर्जिकाओंके ममत्वका
अभाव सिद्ध नहीं होता।

इसके सिवाय जो तुमने कहा था कि स्त्रियां वस्त्रोंके त्याग करनेमें असमर्थ भी नहीं हैं क्योंकि वे वर्तमानमें अपने प्राणों तकको त्याग करती हुई देखी जाती हैं फिर भला वस्त्रोंकी तो बात ही क्या है। परंतु विचार करनेकी बात है कि जब स्त्रियोंमें इतनी शक्ति है फिर भला वे वस्त्रोंको धारण क्यों करती हैं ? उनका त्याग क्यों नहीं कर देतीं क्योंकि वे पुरुषोंके समान वस्त्रोंका त्याग तो कर ही सकती हैं। परंतु शास्त्रोंमें स्त्रियोंको नग्न रहनेकी आज्ञा नहीं है।

" आचेलक्कु देसिय सेज्जाहररायपिंडकिदिकम्मे ।
वदजेट्ठपाडिकमणे मासं पज्जोसवणकप्पो ॥ "

इत्यादि वाक्यके द्वारा दश प्रकारके कल्पसूत्रोंमें पुरुषोंको ही नग्न रहनेका उपदेश दिया गया है। नग्न रहनेवालीं योगिनियोंका जो उदाहरण दिया गया है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि यह उदाहरण तो कुमार्गपर चलनेवाले रथमें बैठे हुए मिथ्यामतावलंबियोंका उदाहरण है जो कि उदाहरण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह तो जिसप्रकार वेदव्यासादिकोंने ईश्वरको जगतका कर्ता कह डाला है उसीप्रकार उन्मत्त लोगोंका कहा हुआ है।

कदाचित् यह कहो कि आर्जिकाओंके लिए वस्त्र धारण करनेका गुरुओंका उपदेश है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे फिर गृहस्थोंको भी मोक्षका साधन प्राप्त हो जाना चाहिये परन्तु ऐसा है नहीं। इसलिये यह सिद्ध होता है कि स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि गृहस्थोंके समान वे बाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंको धारण करती हैं। यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है कि जिसके वस्त्रोंका स्वीकार करना आदि रूप बाह्य परिग्रह है उसके अपने शरीरसे अनुराग होना आदि आभ्यंतर परिग्रह अनु-

मानसे अवश्य सिद्ध होता है। कदाचित् यह कहो कि शरीरसे जो गर्मी निकलती है और उससे जो वायुकाय आदि जीवोंका घात होता है उसकी रक्षा करनेके लिए अपने शरीरमें अनुराग होनेके विना भी वस्त्र धारण किए जाते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इस तरह माननेसे नग्नत्व व्रतको धारण करनेवाले मुनियोंके भी हिंसाका दोष लगना चाहिये। तथा मोक्ष प्राप्त करनेवाले तीर्थंकर अथवा मोक्ष प्राप्तिका उपदेश देनेवाले आचार्य गणधर आदिकोंको भी वस्त्र धारण करने चाहिये और वस्त्रोंको धारण करनेवाले गृहस्थ ही मोक्षगामी होने चाहिये, मुनि नहीं। इसके सिवाय तुमने यह जो कहा है कि समस्त संसारका उपकार करनेवाले भगवान जिनेंद्रदेवने जो जो संयमका उपकार करनेवाले हैं ऐसे वस्त्र आदि सबको उपकरण कहा है परन्तु इसमें विचार करनेकी बात है कि वस्त्रोंको संयमका उपकरण क्यों माना है क्या परिग्रह होनेसे संयमोपकरण माना है यदि परिग्रह होनेसे ही संयमोपकरण माना जाय तो फिर धन आदिको भी संयमोपकरण मानना चाहिए परंतु ऐसा माना किसीने नहीं है।

इसके बाद तुमने यह जो कहा है कि यदि धर्मके साधनोंको ही परिग्रह माना जायगा तो फिर आहार आदिको भी परिग्रह मानना चाहिये आदि। परंतु इसमें प्रश्न यह है कि धर्म है क्या पदार्थ? जिसका साधन वस्त्रादिकोंको मानते हो? क्या पुण्यविशेषको धर्म कहते हैं अथवा संयमविशेषको धर्म कहते हैं? कदाचित् पहिला पक्ष स्वीकार करो अर्थात् पुण्यविशेषको ही धर्म मानो तो वस्त्रोंको तुमने मोक्षका कारण माना है इसीप्रकार शास्त्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार गृहस्थियोंके करने योग्य जितने पुण्य हैं वे सब मोक्षके कारण मानने पड़ेंगे। तथा पुण्यके जितने कारण हैं वे सब मोक्षके कारण मान लेनेपर दान देना आदि पुण्यके कारणोंको

भी मोक्षका कारण मान लेना पडेगा ? यदि दूसरा पक्ष स्वीकार करो अर्थात् संयमको ही धर्म मानो तब तो तुम्हारा कहना किसी तरह नहीं बन सकता क्योंकि बाह्य आभ्यंतर परिग्रहके त्यागको ही संयम कहते हैं । वस्त्र रखनेसे उसे सीना, मांगना, धोना, सुखाना, रखना, उठाना आदिकी चिंताएं तथा मलिन होने और चोरोंसे रक्षा करने आदि चित्तको क्षुब्ध करनेवालीं अनेक चिंताएं उत्पन्न होती रहेंगी फिर भला ऐसी हालतमें उसके बाह्याभ्यंतर परिग्रहोंके त्याग करनेरूप संयम कैसे हो सकता है ? किन्तु इससे तो उलटा संयमका घात होगा क्योंकि यह तो बाह्य आभ्यंतर परिग्रहके त्याग करनेरूप निर्ग्रंथपनेका विरोधी है । इसलिए वस्त्र धारण करना कभी संयमोपकरण नहीं माना जा सकता ।

दूसरी बात यह जो कही गई थी आहार औषधि आदिका ग्रहण करना भी परिग्रह मानना पडेगा इसलिये जिसप्रकार आहार आदि ग्रहण करनेवालोंको मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है उसीप्रकार वस्त्र ग्रहण करनेवालोंको भी मोक्षकी प्राप्ति हो जानी चाहिये । परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है । क्योंकि उद्गम आदि दोषोंको निराकरणकर आहार आदि ग्रहण करनेवाले मुनियोंके रत्नत्रयकी वृद्धि ही होती है । श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए विशुद्ध और प्रमाणसे अबाधित शास्त्रोंके अनुसार ग्रहण किए हुए आहार औषधि आदि मोक्षके कारणोंमें कुछ भी अपकार नहीं करते किन्तु उपकार ही करते हैं । तथा उनके ग्रहण करनेमें रागादिक अंतरंग परिग्रह और अपने शरीरको अच्छा लगना आदि बाह्य परिग्रह भी उत्पन्न नहीं होते इसलिये मानना पडता है कि वे आहार औषधि आदि मोक्षके साधनोंका उपकार ही करनेवाले हैं । यदि उन आहार औषधिका ग्रहण न किया जाय तो आयुका समय शेष रहनेपर भी अनेक विपत्ति आती हैं और आत्मघात होनेका दोष लगता है । परन्तु वस्त्रोंके ग्रहण न करनेमें यह दोष

नहीं लग सकता। इसके सिवाय एक बात यह है कि मोक्षकी इच्छा करनेवाले और परम निर्ग्रंथपना धारण करनेवाले साधु लोग वेला तेला आदि करके अनुक्रमसे उस आहारादिका भी त्याग कर देते हैं और इसी तरह पीछीका भी त्याग कर देते हैं परन्तु आर्जिकाएं कभी वस्त्रोंका त्याग नहीं कर सकतीं। इसलिये आहारादिका ग्रहण करना तो परिग्रह नहीं है किंतु वस्त्रोंका धारण करना परिग्रह अवश्य है।

कदाचित् यह कहो कि वस्त्रोंके ग्रहण कर लेनेपर भी उनमें ममत्वभाव होना असंभव है इसलिये उन्हें परिग्रह नहीं मानना चाहिए परन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। क्योंकि इसमें विरोध आता है जो पदार्थ बुद्धिपूर्वक ग्रहण किया जाता है उसमें मूर्च्छा वा परिग्रहका अभाव कभी सिद्ध नहीं हो सकता जैसे बुद्धिपूर्वक सुवर्णके ग्रहण करनेमें कभी परिग्रहका अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। जिसप्रकार लोग बुद्धिपूर्वक सुवर्णको ग्रहण करते हैं उसीप्रकार आर्जिकाएं वस्त्रोंको ग्रहण करती हैं इसलिये उनके कभी मूर्च्छाका अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। कदाचित् यह कहो कि प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिए जो पीछीका ग्रहण किया जाता है और रोगकी निवृत्तिके लिए जो औषधिका ग्रहण किया जाता है उसमें भी ठीक वैसा ही दोष आता है। सो भी ठीक नहीं है क्योंकि पीछी यदि तीन चार भी ग्रहण करली जायगी तो भी उनसे प्राणियोंकी ही रक्षा की जायगी वे किसी दूसरे काममें नहीं आ सकतीं तथा इन पीछियोंका संबंध मेरे शरीरसे है तथा ये पीछियां मेरी हैं ऐसे ममत्वभावकी सूचना भी नहीं होती। औषधि ग्रहण करनेसे भी आत्माकी सामर्थ्य प्रगट होती है और सामर्थ्य प्रगट होनेसे रागादिकी निवृत्ति होती है। इसके सिवाय पीछी और औषधि आदि नग्नपनेके अविरोधी हैं। वस्त्र नग्नपनेके अविरोधी नहीं हैं किन्तु वे तो उलटे विरोधी हैं इसलिए वस्त्र कभी संयमोपकरण नहीं हो सकते।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि पीछीके समान वस्त्र भी मोक्षके ही कारण हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि संयमके उपकरणके लिए तो भगवानने पीछीका उपदेश दिया है किंतु वस्त्र धारण करनेका उपदेश वे भला क्यों देंगे ? कदाचित् यह कहो कि संयमका उपकार करनेके लिए ही भगवानने वस्त्रोंका उपदेश दिया है। तो फिर तुमने यह जो कहा है कि खुले हुए स्तन जघन आदि अंग उपांगोंको देखकर चित्तमें विकार उत्पन्न होनेके कारण पुरुष लोग स्त्रियोंका तिरस्कार किया करते हैं उन्हें त्रास दिया करते हैं जैसे घोडे किसी तरह शरीरको न ढकनेवाली घोडियोंको त्रास दिया करते उनका तिरस्कार किया करते हैं। अब इसमें पूछना यह है कि पुरुष लोग स्त्रियोंका तिरस्कार क्यों किया करते हैं उन्हें क्यों त्रस्त करते हैं। स्त्रियां खुले शरीरवाले पुरुषोंका तिस्कार क्यों नहीं करतीं उनको त्रास क्यों नहीं देतीं ? इसका कुछ भी तो कारण बतलाना चाहिये ? कदाचित् यह कहो कि स्त्रियोंमें शक्ति थोडी होती है और इसीलिए वे तिरस्कार करने योग्य वा त्रास पाने योग्य समझी जाती हैं क्योंकि गाय घोडे आदि जानवरोंमें यह विभाग प्रसिद्ध है कि नारी जाति अथवा नारियोंकी प्रकृति वा स्वभाव आभि-भाव्य (पराभव होने योग्य) है और मनुष्य जाति अथवा मनुष्योंकी प्रकृति वा स्वभाव आभिभावक है [पराभव करने योग्य है] तो फिर नारियोंको मोक्षकी प्राप्ति बतलाना गीदडके द्वारा सिंहके मस्तकपरके सीधे फैले हुए अयालोंके समूहको खींचनेकी इच्छा करनेके समान है। अरे जिनकी शक्ति बहुत ही थोडी है और प्राणीमात्र जिनका पराभव कर सकते हैं वे नारियां समस्त तीनों लोकोंको पराभव करनेवाले कर्मोंके समूहको अत्यंत नाश करनेरूप, अक्षय और बडी भारी शक्तिवाले मनुष्योंके द्वारा प्राप्त करने योग्य मोक्षको किसप्रकार प्राप्त कर सकेंगी ?

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि "जिसके शरीरमें अधिक शक्ति हो वही मोक्षके मार्गका उपार्जन कर सकता है" यह बात ठीक नहीं है क्योंकि यदि शरीरमें अधिक शक्ति रखनेवाले ही मोक्षमार्गका उपार्जन कर सकते हों तो नारियां भी वामन् (बौना) अंधे लूले लंगडे गूंगे आदि मनुष्योंका पराभव करतीं हैं इसलिए वे नारियों भी उन लोगोंसे अधिक शक्तिशालिनी होनेके कारण मनुष्योंके समान मोक्ष प्राप्त करने योग्य बलशालिनी होनी चाहिए अर्थात् ऐसी नारियोंको अवश्य ही मोक्षकी प्राप्ति हो जानी चाहिए ? इत्यादि परंतु यह कहना भी बडे भारी मोहनीय कर्मके उदयसे समझना चाहिए क्योंकि कदमें छोटे होनेके कारण अथवा हाथपैर टूट जानेके कारण वा आंख कांन विगड जानेके कारण शरीरके हीन होनेपर भी वे पुरुष उन नारियोंसे कभी कम शक्तिवाले नहीं हो सकते। और दूसरी बात यह है कि जिनके वज्रवृषभनाराचसंहनन है जो बडी भारी शक्तिको धारण करनेवाले हैं और जिनके समचतुरस्र आदि उत्तम संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान है वे ही मोक्षमार्गको सिद्ध कर सकते हैं। वज्रवृषभ नाराच संहननके सिवाय अन्य संहननको धारण करनेवालोंके मोक्षकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। अन्य संहननवालोंके तो नवग्रैवेयक पर्यंत जानेकी सामर्थ्य होती है। कर्मभूमिमें उत्पन्न हुई नारियोंके अंतके तीन संहनन होते हैं इसलिए उनके मोक्ष जानेकी योग्यता ही नहीं हो सकती अतएव-वे मोक्षकी प्राप्ति नहीं कर सकतीं।

---

१ कर्मभूद्रव्यनारीणां नाद्यं संहननत्रयं। वस्त्रादानाच्चरित्रं च तासां मुक्तिकथा वृथा ॥

कर्म भूमिमें उत्पन्न हुई द्रव्यस्त्रियोंके पहिलेके तीन संहनन नहीं होते और वस्त्रोंको ग्रहण करनेके कारण चारित्र नहीं होता इसलिये उनको मोक्ष प्राप्त होनेकी बात कहना व्यर्थ है।

दूसरी बात यह है कि जो स्त्रियां (देवियां) स्वर्ग लोकसे दूसरे स्वर्गमें ऊपर उत्पन्न नहीं हो सकतीं और नवग्रैवेयक नव अनुदिश पंच पचोत्तर आदि विमानोंमें जा नहीं सकतीं उन स्त्रियोंमें मोक्ष प्राप्त करनेकी शक्ति है यह कहना लंगडेको मेरु पर्वतके ऊपर चढनेके समान अत्यंत ही आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला है। क्योंकि मोक्षके समस्त कारण प्राप्त हुए विना कर्मोंका मर्म कभी नष्ट नहीं किया जा सकता । इस लिये स्त्रियां कभी पुरुषोंके समान शक्तिशालिनी नहीं हो सकतीं। कदाचित् यह कहा जाय वस्त्र ग्रहण करने पर गृहस्थोंके तो ममत्वका सद्भाव रहता है इस लिये उन्हें तो मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती किंतु अर्जिकाके वस्त्र रहने पर भी ममत्व नहीं होता इस लिये उसे मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है परंतु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि जो वस्त्रोंको ग्रहण करता है उसके ममत्व अवश्य होता है यह निश्चित सिद्धांत है।

कदाचित् यह कहो कि अर्जिकाएं वीतराग होकर भी केवल लज्जानिवारणके लिए वस्त्रों को ग्रहण करती हैं इस लिये उनके ममत्व बुद्धिकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मान लेने पर अर्जिकाएं वीतराग होने पर भी केवल अशांति, इंद्रियोंकी लोलुपता और काम पीडाको दूर करनेके लिये किसी कामी पुरुषका सेवन करलें तो भी उनकी वीतरागतामें कोई हानि नहीं होनी चाहिये।

कदाचित् यह कहो कि कामकी तो एक पीडा होती है उसके दूर करनेकेलिये काम सेवन किया जाता है इसलिये उसके साथ वीतरागताका विरोध होता है तो फिर लज्जा होने पर भी वीतरागताका विरोध आता है। क्योंकि दोनों एकसे हैं। दूसरी बात यह है कि वीतरागके लज्जा उत्पन्न हो ही नहीं सकती। लज्जा तो राग होने पर ही उत्पन्न हो सकती है क्योंकि

बीभत्स अवयवोंको ढकनेकी इच्छा करना ही लज्जा है। जिसके राग नहीं होता उसके लज्जा भी नहीं होती जैसे बालक । इसी तरह आपकी मानी हुई युवती वा आर्जिका भी वीतराग है इसलिये उसके भी लज्जा नहीं होनी चाहिये।

इस ऊपरके कथन करनेसे किसीने जो यह कहा था कि मुनिके ऊपर उपसर्ग कर डाले हुए कपडेके समान आर्जिकाएं वस्त्र धारण करने पर भी परिग्रहरहित गिनी जाती हैं उसका भी निराकरण समझ लेना चाहिये। क्योंकि जो वस्त्र उपसर्गके द्वारा डाली जाती है वह बुद्धिपूर्वक ग्रहण नहीं किया जाता।

कदाचित् यह शंका करो कि आर्जिकाओंके वस्त्रोंका त्याग स्वीकार किया जायगा तो फिर उनके लज्जा अधिक होनेसे उन्हे दीक्षाकी स्वीकारता ही नहीं देनी चाहिये। यदि वे वस्त्र स्वीकार कर लेंगी तो उनके केवल वस्त्रोंके स्वीकार करनेका दोष तो बना रहेगा परंतु पूर्ण और निर्मल शील व्रत पालन करनेका गुण बढ जायगा इस लिये वस्त्रोंका त्याग और वस्त्रोंकी स्वीकारता इन दोनोंमें गुण और दोष दोनोंकी हीनाधिकताका प्ररूपण करते समय भगवान जिनेंद्र देवने आर्जिकाओंके लिये वस्त्रोंके स्वीकार करनेका उपदेश दिया है। परंतु यह सब तो हमको भी स्वीकार है इस इतने कथनमें हमें तो कोई विवाद नहीं है। हमे तो केवल मोक्षकी प्राप्तिमें विवाद है कदाचित् यह कहो कि उन आर्जिकाओंका शील मोक्ष प्राप्त कर देनेमें समर्थ है सो भी सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह आर्जिकाओंका शील श्रावकोंके शील व्रतके समान परिग्रहके आश्रित रहनेके कारण कभी मोक्षकी सिद्धि नहीं कर सकता। श्रावकोंका शीलव्रत और आर्जिकाओंका शील व्रत इन दोनोंका वर्णन करते समय भगवानने कुछ हीनाधिकता

नहीं दिखलाई है जिससे कि कहा जा सके कि अर्जिकाओंका शील व्रत मोक्षको सिद्ध कर सकता है, श्रावकोंका नहीं।

कदाचित् यह कहो कि श्रावकोंका शीलव्रत हिंसासे दूषित है इसलिए उससे मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती परन्तु आर्जिकाओंके शीलव्रतमें भी यह दोष समान रीतिसे मिलता है अर्थात् वह भी हिंसासे दूषित रहता ही है। कदाचित् यह कहो कि स्त्रियोंका शीलव्रत हिंसासे दूषित नहीं होता सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जू लीख आदि अनेक सम्मूर्च्छन प्राणी स्त्रियोंके वस्त्रमें उत्पन्न होते हैं इसलिये गृहस्थोंके शीलके समान अर्जिकाओंका शीलव्रत भी हिंसासे दूषित है कदाचित् यह कहो कि संम्मूर्च्छन जीवोंका अधिकरणभूत वह अर्जिकाओंका वस्त्र हिंसाका अंग नहीं हो सकता तो फिर अर्जिकाओंके मस्तक परके बालोंका मुंडन करना भी व्यर्थ हो जायगा वह भी नहीं कराना चाहिये क्योंकि जूं लीख आदि संमूर्च्छन जीवोंके आधारभूत वस्त्रके समान जूं लीख आदिसे भरे हुए मस्तकके बालोंको भी हिंसाका अंग नहीं मानना चाहिये और मानना हो तो दोनों जगह समान मानना चाहिये।

कदाचित् यह कहो कि शरीरको नग्न रखनेसे शरीरकी गर्मीसे स्थावरकायके जीवोंकी हिंसा होती है उस हिंसाको दूर करनेके लिये वस्त्रोंका ग्रहण किया जाता है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि वस्त्रोंको ग्रहण करनेपर भी जीवोंकी हिंसा तो वैसी की वैसी ही होती रहती है। हाथ पैर आदि जो शरीरके अवयव वस्त्रसे ढके नहीं है उनके समान शरीरके मध्यके प्रदेशोंकी गर्मीसे भी जीवोंकी हिंसा निवारण नहीं की जा सकती। भावार्थ— जैसे हाथ पैर आदि खुले प्रदेशोंकी गर्मीसे जीवोंकी हिंसा होती रहती है उसीप्रकार ढके हुए प्रदेशोंकी गर्मीसे भी जीवोंकी हिंसा

होती रहती है, मिट नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि ताड़के पंखेकी हवासे जिस प्रकार प्राणियोंका घात होता है उसी प्रकार वस्त्रोंके समेटने फैलाने आदिसे उत्पन्न हुई हवाके द्वारा आकाशमें रहनेवाले प्राणियोंका घात भी अवश्य ही होगा। तथा जिस प्रकार प्राणियोंकी हिंसा दूर करनेके लिये वस्त्रोंका ग्रहण किया जाता है उसीप्रकार प्राणियोंकी हिंसा दूर करनेके लिये विहार करना भी बंद कर देना चाहिये क्योंकि इसमें भी हिंसा होती है। कदाचित् यह कहो कि यत्नपूर्वकविहार करनेसे प्राणियोंका घात होनेपर भी हिंसा नहीं होती तो फिर वस्त्र-रहित होने पर भी यही बात होनी चाहिये अर्थात् यत्नाचारपूर्वक रहनेपर वस्त्ररहित रहने में भी हिंसा नहीं होती है। जिसप्रकार यज्ञ करनेमें पशुओंकी हिंसा होती है इसलिये वह जीवों को कल्याणकारी न होनेके कारण त्याज्य है—त्याग करने योग्य है उसीप्रकार वस्त्रोंके ग्रहण करनेमें भी हिंसा होती है इसलिये वस्त्र भी जीवोंको कल्याणकारी न होनेके कारण त्याग करने योग्य हैं। क्योंकि दोनों ही समान हैं—दोनोंमें हिंसा होती है।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा है कि आर्जिकाओंके प्रमाद नहीं होता इसलिये उनके हिंसा भी नहीं हो सकती सो केवल मनोरथमात्र है अर्थात् झूठी कल्पना है क्योंकि लोभ कषाय की परिणति रहते हुए प्रमादका अभाव कभी संघटित नहीं हो सकता। लोभकी परिणतिको ही तो प्रमाद कहते हैं सो ही शास्त्रोंमें लिखा है।

विकहा तहा कसाया इंदिय णिद्दा य तहेव पणयो य।
चदु चदु पण एगेगं होंति पमादा हु पण्णरस ॥ ३४ ॥ गो० जीवकांड।

अर्थात्—"विकथा चार, कषाय चार, इंद्रिय पांच, निद्रा एक और प्रणय एक इस प्रकार

पंद्रह प्रमाद कहलाते हैं।" अर्जिकाएं बुद्धिपूर्वक वस्त्रोंको स्वीकार करती हैं इसलिये उनके लोभ कषायकी परिणति विद्यमान है यह अपने आप निश्चय हो जाता है ।

इस कथन करनेसे किसीने यह जो कहा था कि आर्जिकाओंके मूर्च्छा नहीं होती इसलिये उनके वस्त्रका ग्रहण करना परिग्रह भी नहीं गिना जाता उसका भी निराकरण समझ लेना चाहिये क्योंकि वस्त्रोंका तो त्याग किया जा सकता है और शरीर जन्मसे लेकर मरण पर्यंत सदा साथ रहता है इसलिये इसका त्याग हो नहीं सकता । तथा जो मुनि बिल्कुल निस्पृह होते हैं अपने शरीरसे भी स्पृहा छोड देते हैं उनके ममत्वका सर्वथा अभाव होनेसे उनका शरीर परिग्रह नहीं गिना जाता क्योंकि यदि उनका शरीर परिग्रह गिना जाय, उसमें ममत्व माना जाय तो फिर उनके द्वारा परीषहोंका सहन भी किसी तरह नहीं किया जा सकता । (मुनि लोग परीषहोंका सहन करते हैं इसलिए उनके ममत्वका अभाव सिद्ध होनेसे उनका शरीर परिग्रह नहीं गिना जाता) लिखा भी है–

"देहो बाहिरगंथो अण्णो अक्खाण विसयअहिलासो ।
तेसिं चाए खवओ परमत्थे हवइ णिग्गंथो ॥" इति ॥

अर्थात्–'शरीर बाह्य परिग्रह है और इंद्रियोंके विषयोंकी अभिलाषा करना अंतरंग परिग्रह है इन दोनोंका त्याग कर देनेसे क्षपकश्रेणीमें वास्तविक निर्ग्रंथ होता है।'

इस कथनसे वस्त्रोंको ग्रहण करना संयमका उपकार करनेके लिए है इस बातका भी खंडन समझ लेना चाहिए । क्योंकि आर्जिकाओंके संयम होनेपर भी वह उनका संयम मोक्षका कारण नहीं हो सकता क्योंकि आर्जिकाओंके उस संयममें मोक्षके कारणीभूत चारित्रका अभाव है जिस

प्रकार तिर्यंच और गृहस्थियोंके संयममें मोक्षके कारणीभूत यथार्थ चारित्रका अभाव है। तथा वह अर्जिकाओंका संयम कभी मोक्षका कारण नहीं हो सकता क्योंकि वह संयम वस्त्रसहित है जिसप्रकार वस्त्रसहित होनेके कारण गृहस्थोंका संयम मोक्षका कारण नहीं होता उसीप्रकार वस्त्रसहित होनेके कारण अर्जिकाओंका संयम भी मोक्षका कारण नहीं होता। यह हेतु किसी भी तरहसे असिद्ध भी नहीं हो सकता क्योंकि अर्जिकाओंके वस्त्ररहित संयम कभी नहीं दिखाई देता और न शास्त्रोंमें ही उनके लिए वस्त्ररहित संयम धारण करनेकी आज्ञा है कदाचित् यह कहो कि यद्यपि शास्त्रोंमें अर्जिकाओंके लिए वस्त्र त्याग करनेकी आज्ञा नहीं है तथापि मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्हें वस्त्रोंका त्याग कर देना उचित ही है सो भी नहीं है क्योंकि भगवान जिनेंद्रदेवके कहे हुए शास्त्रोंका उलंघन करनेसे मिथ्यात्वके सेवन करनेका भारी दोष लगेगा।

कदाचित् यह कहो कि पुरुषोंको तो वस्त्ररहित संयम धारण करना ही मोक्षका कारण है और स्त्रियोंको वस्त्रसहित संयम धारण करना मोक्षका कारण है तो फिर कारण वा साधनोंके भेदसे मोक्षरूप कार्यके भी दो भेद अवश्य मानने चाहिए। क्योंकि जो संयम अत्यंत भिन्न है वह अत्यन्त भिन्न कार्यको ही उत्पन्न करेगा। जैसे श्रावकोंका संयम मुनियोंके संयमसे अत्यंत भिन्न है इसलिए वह मोक्षसे अत्यंत भिन्न स्वर्गादिके कार्यको उत्पन्न करता है) तुम लोगोंका माना हुआ मोक्षका कारणीभूत मुनि और आर्जिकाओंका संयम अत्यंत भिन्न है क्योंकि एक वस्त्ररहित है और दूसरा वस्त्रसहित है। इसलिए मोक्षके भी दो भेद होने चाहिये। परंतु आप लोगोंने मोक्षके तो दो भेद माने नहीं हैं क्योंकि मुनि आर्जिका दोनोंको ही समस्त कर्मोंके क्षय होनेरूप मोक्षकी प्राप्ति समान रूपसे मानी है। इस हिसाबसे फिर देशसंयमियोंको

चाहिये और देश संयमियोंको मोक्षकी प्राप्ति माननेसे मुनियोंका चिन्ह धारण करना मुनि होना आदि सब व्यर्थ मानना पडेगा। इसलिए वस्त्रसहित संयम कभी मोक्षका कारण नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि वस्त्रसहित संयम मोक्षका कारण है यह बात तुमने किसतरह जानी ? कदाचित् यह कहो कि हमने अपने सिद्धांतसे—शास्त्रोंसे जानी है सो ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार तुम्हारे लिए यज्ञ करनेकी आज्ञा देनेवाला वेदादि शास्त्र आगमाभास है उसीप्रकार हमारे लिए तुम्हारा शास्त्र भी आगमाभास है। इसतरह भी वस्त्रसहित संयम मोक्षका कारण सिद्ध नहीं हो सकता।

एक बात यह भी है कि यदि वस्त्रसहित संयमको मोक्षका कारण कहोगे तो फिर मोक्ष प्राप्त करनेवालोंको कर्तव्यरूपसे उन वस्त्रोंके त्याग करनेका प्रतिपादन नहीं कर सकते परन्तु आपके शास्त्रोंमें भी मोक्ष प्राप्त करनेवालोंको कर्तव्यरूपसे वस्त्रोंके त्यागकरनेका प्रतिपादन किया है। इसलिए वस्त्रादिक कभी मोक्ष प्राप्त होनेके कारण वा अंग नहीं हो सकते। इसी बातको हेतुपूर्वक दिखलाते हैं। वस्त्र मोक्षका कारण नहीं है क्योंकि मोक्ष प्राप्त करनेवालोंके लिये कर्तव्यरूपसे उन वस्त्रोंके त्याग करनेका उपदेश दिया गया है। मोक्ष प्राप्त करनेवालोंको कर्तव्यरूपसे जिन पदार्थोंके त्याग करनेका उपदेश दिया जाता है वे पदार्थ कभी मोक्षके कारण नहीं हो सकते जैसे मिथ्यादर्शन आदि। मोक्ष प्राप्त करनेवालोंको कर्तव्यरूपसे वस्त्रोंके त्याग करनेका उपदेश दिया है इसलिये वस्त्र कभी मोक्षके कारण नहीं हो सकते तथा जो जो मोक्षके कारण होते हैं मोक्ष प्राप्त करनेवालोंको कर्तव्यरूपसे उनके त्याग करनेका उपदेश नहीं दिया जाता जैसे सम्यग्दर्शनादिक। भावार्थ—सम्यग्दर्शन मोक्षका कारण है इसलिए मोक्ष प्राप्त करने·

वालोंके लिए उसके त्याग करनेका भी उपदेश नहीं दिया इसीतरह यदि वस्त्र भी मोक्षके कारण होते तो उसके भी त्याग करनेका उपदेश नहीं दिया जाता परन्तु शास्त्रोंमें तो मिथ्यादर्शनके समान कर्तव्यरूपसे उनके त्याग करनेका उपदेश दिया गया है इसलिये जैसे मिथ्यादर्शन मोक्ष का कारण नहीं है उसीप्रकार वस्त्र भी मोक्षका कारण नहीं है ।

कदाचित् यह कहो कि लज्जा और सर्दी गर्मी आदिकी पीडा दूर करनेके लिए वस्त्रादिकोंका ग्रहण किया जाता है ? तो फिर कामकी पीडा आदिको दूर करनेके लिए स्त्री तांबूल आदिको भी क्यों नहीं ग्रहण कर लेते हो ? कदाचित् यह कहो कि जिसके विना पुरुषोंकी पीडा दूर नहीं होती उन सब पदार्थोंका ग्रहण करना चाहिये सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसे मानने से पक्षियोंके मांसके ग्रहण करनेका भी प्रसंग आ जायगा अर्थात् जिन पुरुषोंकी पीडा विना पक्षियोंके मांस खाए दूर नहीं हो सकती उन्हें पक्षियोंका मांस खानेका भी प्रसंग आजायगा ? यदि खंडवस्त्रोंके ग्रहण करनेमें वास्तवमें वैराग्यरूप परिणाम रहते हैं तो फिर स्त्रीमात्रको ग्रहण करनेमें भी वैराग्यरूप परिणाम क्यों नहीं रहने चाहिये । क्योंकि दोनोंमें समान ही आक्षेप और समान ही समाधान होता है । (भावार्थ—रागादि परिणामोंके होनेसे ही स्त्रीका ग्रहण होता है तो वस्त्रोंका ग्रहण भी रागादि परिणामोंके होनेसे ही होता है । यदि वस्त्रमात्रके ग्रहण करनेसे राग नहीं होता तो स्त्रीमात्रके ग्रहण करनेसे भी राग नहीं होता इसप्रकार आक्षेप और समाधान दोनों ही समान हैं ।)

कदाचित् यह कहो कि नग्न रहनेसे स्त्रीको देखकर अपना मन क्षुब्ध हो सकता है और अपना शरीर देखकर स्त्रीका मन क्षुब्ध हो सकता है अतएव दोनोंके मनकी क्षुब्धता दूर करने

के लिए वस्त्रोंका ग्रहण किया जाता है परन्तु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि मनका क्षुब्ध होना इच्छाके आधीन है इसलिए केवल वस्त्रोंके ग्रहण करनेमात्रसे उसका निषेध नहीं हो सक्ता। अन्यथा आंखें खोलनेके लिए पलकोंका बंद कर लेना भी ठीक समझा जायगा क्योंकि मनमें क्षोभ उत्पन्न होनेके लिए दोनों हालतोंमें हेतुमें कोई विशेषता नहीं है। जिस प्रकार मुर्देके शरीरको देखकर स्त्रियोंको कोई रागभाव प्रगट नहीं होता उसीप्रकार वीभत्स मलिन और जिसका मस्तक मुडा हुआ है ऐसे साधुको देखकर उन्हें कभी रागभाव प्रगट नहीं हो सकता। किंतु ऐसे साधुको देखकर उलटा वैराग्य उत्पन्न होता है इसलिए परीषहोंसे भग्न होनेवाले परीषहोंको न सह सकनेवाले तथा रागद्वेषसे भरे हुए लोगोंने ही अपने शरीरपर वस्त्र धारण करनेका विधान किया है इसलिए वस्त्र धारण करनेसे बाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका सद्भाव मानना पडता है और दोनों प्रकारके परिग्रहोंका सद्भाव होनेसे मोक्षके कारणीभूत यथार्थ संयमका भी अभाव हो ही जाता है और संयमका अभाव होनेसे मोक्षका अभाव मानना ही पडता है यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी।

अब आगे सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके द्वारा स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं इस वातका विचार करते हैं।

श्वेतांबरोंने स्त्रियोंमें विशेष सामर्थ्यका अभाव न माननेमें तथा उनमें अधिक बलका अभाव न माननेमें पांच हेतु दिये हैं उनमेंसे पहला हेतु सातवें नरकमें जानेका अभाव जिस जन्ममें हो इत्यादि बतलाया है तथा ऐसा माननेमें चरमशरीरियोंके द्वारा व्यभिचार दोषकी संभावना बतलाई है सो सब मिथ्या है क्योंकि विचारके सामने वह किसी तरह टिक नहीं

सकता। स्त्रियां सातवें नरकमें जा नहीं सकतीं इसका यह अर्थ है कि उनमें सातवें नरकमें ले जानेवाले कर्मोंके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य नहीं है। यह सातवें नरकमें ले जानेवाले कर्मोंके उपार्जन करनेकी सामर्थ्यका अभाव स्त्रियोंमें ही है, चरमशरीरी जीवोंमें नहीं है। शास्त्रोंमें सुना है कि भरत चक्रवर्ती आदि चरमशरीरियोंमें भी सातवें नरकमें ले जानेवाले कर्मोंको उपार्जन करनेकी सामर्थ्य है और जिनपूजन सामायिक आदि करते समय सर्वार्थसिद्धिमें लेजानेवाले कर्मोंको उपार्जन करनेकी सामर्थ्य है। उत्कृष्ट परिणाम भी दो प्रकारके होते हैं, शुभ और अशुभ। उनमेंसे उत्कृष्ट शुभ परिणामोंसे उत्कृष्ट शुभ गतिके कर्म बंधते हैं और उत्कृष्ट अशुभ परिणामोंसे उत्कृष्ट अशुभ गतिके कर्म बंधते हैं परन्तु उन उत्कृष्ट शुभ परिणाम और उत्कृष्ट अशुभ परिणाम इन दोनोंके प्राप्त होनेकी सामर्थ्य पुरुषमें ही है स्त्रीमें नहीं है। जिसप्रकार स्त्रियोंमें उत्कृष्ट अशुभ परिणामोंके प्राप्त होनेका अभाव है उसीप्रकार उनमें अत्यंत शुभ परिणामोंके प्राप्त होनेका भी अभाव है। तथा जिसप्रकार उत्कृष्ट शुभ अशुभ दोनों प्रकारके परिणामोंके प्राप्त होनेका अभाव है उसीप्रकार उनमें उत्कृष्ट शुद्ध परिणामोंके प्राप्त होनेका भी अभाव है।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा है कि "जिसमें उत्कृष्ट अशुभ गतिके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य नहीं होती उसमें उत्कृष्ट शुभगतिके उपार्जन करनेकी भी सामर्थ्य नहीं होती यह बात किसी तरह नहीं बनती' सो भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रसन्नचंद्रराजर्षि आदिमें तो दोनों प्रकार की सामर्थ्य थी। यह नियम है कि जिस वेदको (पुरुषवेदको) जिसके हेतुकी (सर्वार्थ सिद्धि वा मोक्षके हेतुकी) परम उत्कृष्टता है उसी वेदको सातवें नरकके कारणीभूत अशुभ परिणाम

की परम प्रकर्षता भी अवश्य है । जैसे जिस मनुष्य वेदसे मोक्ष वा सर्वार्थसिद्धि जा सकता है उसी मनुष्य वेदसे सातवें नरक भी जा सकता है । कदाचित् यह कहो कि यह हेतु चरमशरीरी के द्वारा अनेकांत वा व्यभिचारी होता है अर्थात् चरम शरीरी मोक्ष तो जाता है परंतु सातवें नरक नहीं जा सकता सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यह कथन वेदसामान्यकी अपेक्षासे कहा गया है । विशेष व्यक्तिकी अपेक्षासे नहीं । परंतु विपरीत दशामें यह नियम संघटित नहीं होता क्योंकि नपुंसक वेदमें सातवें नरकमें ले जानेवाले पाप कर्मोंकी परम प्रकर्षता होनेपर भी मोक्ष जाने योग्य अत्यंत शुद्ध परिणामोंकी परम प्रकर्षता स्वीकार नहीं की है परंतु वही परम प्रकर्षता पुरुषवेदमें स्वीकार की है । जिसप्रकार शब्दमें प्रयत्नके अनंतर उत्पन्न होना और विना प्रयत्नके उत्पन्न होना दोनों ही वातें सिद्ध होती हैं । शब्द प्रयत्नके अनंतर ही उत्पन्न होता है क्योंकि वह अनित्य है जो जो अनित्य होते हैं वे सव प्रयत्नके वाद उत्पन्न होते हैं इस जगह जिसप्रकार व्याप्यरूपसे (थोडी जगह) रहनेवाला अनित्यत्वरूप हेतु शब्दादिकमें प्रयत्नके अनंतर उत्पन्न होनेरूप कार्यको सिद्ध करता है उसीप्रकार वह मेघकी गर्जनामें प्रयत्नके अनंतर उत्पन्न होनेरूप कार्यको सिद्ध नहीं कर सकता । इसी तरह इस प्रकरणमें भी (नपुंसक वेदमें) समझ लेना चाहिये । कदाचित् यह कहो कि अभव्य जीव भी सातवें नरकमें नहीं जाने चाहिए क्योंकि वे मोक्ष नहीं जा सकते सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कहना वादी प्रतिवादी दोनोंके माने हुए आगमसे विरुद्ध है । यदि ऐसा ही मानोगे अर्थात् अभव्योंको भी सातवें नरकका अभाव मानोगे तो फिर स्त्रियोंके समान नपुंसकोंको भी मोक्षकी प्राप्ति होनी चाहिये कदाचित् यह कहो कि नपुंसकके मोक्ष प्राप्त होनेके कारणोंकी परम प्रकर्षता विद्यमान है क्यों-

कि उनमें पुरुषोंके समान सातवें नरकमें जानेके कारण पाप कर्मोंकी परम प्रकर्षता विद्यमान है अथवा पुरुषमें मोक्ष प्राप्त होनेके कारणोंकी परम प्रकर्षता नहीं है क्योंकि उसमें सातवें नरकमें जानेके कारणीभूत अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता विद्यमान है जैसे नपुंसकमें। भावार्थ—जैसे नपुंसकमें सातवें नरकमें जाने योग्य अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता है परंतु वह मोक्ष नहीं जा सकता इसीप्रकार पुरुषमें भी सातवें नरकमें जाने योग्य अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता है इसलिए उसे भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होनी चाहिए। अथवा नपुंसकमें सातवें नरकमें जाने योग्य अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता नहीं होनी चाहिए क्योंकि वह सबसे अधिक प्रकर्षता है जैसे स्त्रियोंमें नहीं होती। भावार्थ—जैसे स्त्रियोंमें सातवें नरकमें जानेकी परम प्रकर्षता नहीं होती उसीप्रकार नपुंसकोंमें भी नहीं होनी चाहिये। इसप्रकार सब तरहसे अनिष्ट सिद्धांतकी प्राप्ति हो जायगी क्योंकि वादी प्रतिवादी दोनोंके द्वारा माने हुए कारणोंसे वादी प्रतिवादी दोनोंके माने हुए प्रसिद्ध सिद्धांतका निषेध करनेमें वादी प्रतिवादी दोनों ही समान हैं। परंतु यह सब कहना ठीक नहीं है क्योंकि यह सब कथन वादी प्रतिवादी दोनोंके माने हुए आगमसे विरुद्ध है।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि सातवें नरकमें जानेके अभावकी मुक्तिके अभावके साथ व्याप्ति नहीं है सो भी मदरूपी मद्यसे गद्गद हुए कंठके द्वारा कही हुई जान पडती है अर्थात् ठीक नहीं क्योंकि जिनमें परस्पर कार्यकारण भाव नहीं है ऐसे कृत्तिका नक्षत्रके उदयसे शकट नक्षत्रके उदयका ज्ञान देखा ही जाता है। क्योंकि अविनाभावका नाम ही व्याप्ति है और साध्य साधक भावके कारणको ही अविनाभाव कहते हैं इसलिए यद्यपि सातवें नरक

में जानेके अभावका मुक्तिके अभावके साथ कार्य कारणभाव नहीं है तथापि दोनोंकी व्याप्ति बन जाती है । कदाचित् यह कहो कि जिनका परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है अथवा जन्यजनक सम्बन्ध है उन्हींका अविनाभाव संबंध नियत रहता है दूसरेका नहीं । सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे फिर शकट नक्षत्रके उदय होनेरूप साध्यकेलिए कृत्तिका नक्षत्रके उदय होनेरूप हेतुको गमकता (हेतुपना) ही नहीं बन सकेगी परन्तु इन दोनोंका अविनाभाव श्लोकवार्तिकालंकारमें बडे विस्तारके साथ प्रतिपादन किया है वहांसे जान लेना चाहिए, इसलिये इन्हीं सब कारणोंसे सातवें नरकमें जानेकी शक्ति मोक्ष जानेके लिए कारण नहीं है क्योंकि वह व्यापक नहीं है इत्यादि श्वेतांबरियोंने जो प्रतिपादन किया था उसका निराकरण किया गया है । क्योंकि इसप्रकार कहनेवाले लोग दीवालके इस भागके अभावका अभाव जानकर अर्थात् दीवालके इस भागका सद्भाव जानकर दूसर भागके अभावके अभाव की विभावना वा कल्पना करते हैं । क्योंकि इसमें तादात्म्य संबंध अथवा जन्यजनक सम्बन्ध के प्रतिबंधका अभाव है ।

कदाचित् यह कहो कि इन दोनोंमें एकार्थ नामका समवाय संबंध है इसीलिये इन दोनों में गम्यगमकभाव हो जायगा सो भी ठीक नहीं है । क्योंकि ऐसा माननेसे नैयायिक मतका लोप हो जायगा । दूसरी बात यह है कि नैयायिकके माने हुए समवाय संबंधकी सिद्धि हो नहीं सकती फिर भला एकार्थ नामके समवाय संबंधकी सिद्धि तो किस प्रकार हो सकेगी ? क्योंकि समवाय संबंधकी सिद्धि हो लेनेपर एकार्थ नामके समवाय संबंधकी सिद्धि हो सकती है । अथवा समवाय संबंधकी सिद्धि मान भी ली जाय तो भी जब कृत्तिकोदय और शकटोदयके साथ गम्य

गमकभाव बन जायगा तो फिर सातवें नरकमें जानेके अभावके साथ मुक्तिके अभावका भी गम्य गमकभाव बन जायगा क्योंकि जिस प्रकार कृत्तिकोदय और शकटोदयमें एकार्थ समवाय संबंधकी संभावना है उसी प्रकार सातवें नरकमें जानेके अभाव और मुक्ति अभावमें भी एकार्थ समवाय संबंधकी संभावना होती है। क्योंकि जिस जीवमें सातवें नरकमें जानेकी योग्यता समवाय संबंधसे रहती है उसी जीवमें मोक्ष जानेकी योग्यता भी रहती है।

कदाचित् यह कहो कि सातवें नरकमें जानेकी योग्यता न होनेके कारण स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्तिका निषेध सिद्ध नहीं कर सकते सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे ऊपर लिखे हुए सब दोष उपस्थित हो जांयगें। किंतु जिसमें ज्ञानादिककी परम प्रकर्षता प्राप्त होती है ऐसे मोक्षकी प्राप्ति स्त्रियोंको नहीं हो सकती क्योंकि मोक्षकी प्राप्ति परम प्रकर्षरूप है। जो जो परम प्रकर्षरूप होते हैं वे सब स्त्रियोंको प्राप्त नहीं होते जैसे सातवें नरकमें जानके कारण अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता स्त्रियोंमें नहीं होती। इस प्रकार परम प्रकर्षतारूप हेतुसे स्त्रियोंके मोक्षकी प्राप्तिके निषेधरूप प्रकरणमें साध्य साधनकी व्याप्ति सिद्ध हो जानेके कारण उनके मोक्षके कारणोंका अभाव सिद्ध होता है। और मोक्षके कारणोंका अभाव सिद्ध होनेसे मोक्षकी प्राप्तिका अभाव भी सिद्ध होता है। कदाचित् यह कहो कि वे स्त्रियां मोक्षके कारणोंका अभाव होनेपर भी स्वयमेव मुक्त हो जायंगी सो भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जायगा तो बिना कारणके भी कार्यकी उत्पत्ति मान लेनी पडेगी। इसलिये पहले जो यह कहा गया था कि स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्त करनेके लिये सातवें नरकमें जाना रत्नत्रयके समान कारण नहीं है इत्यादि सो भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि मोक्षकी प्राप्तिमें सातवें

नरकमें जानेको हमने कुछ कारण नहीं माना है। इसलिये यदि स्त्री देहको भी मोक्षके कारणों की परमप्रकर्षता प्राप्त हो जाय तो फिर परमप्रकर्षताकी स्वीकारता करनेमात्रसे ही दूसरी अनिष्टरूप सातवें नरकमें जानेके कारणोंकी अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता भी अवश्य माननी पडेगी। कदाचित् यह कहो कि स्त्रियोंमें मोक्षके कारणोंकी परम प्रकर्षता होनेपर भी सातवें नरकमें जानेके कारणीभूत अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता नहीं होती तो फिर सातवें नरकमें जानेके कारणीभूत अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षताकी योग्यता हुए विना मोक्षके कारणोंकी परम प्रकर्षता भी नहीं हो सकती।

इसी कथनसे 'नीचेके साथ ऊपरकी तुलना विषम है बन नहीं सकती' इत्यादि जो कहा था उसका खंडन भी समझ लेना चाहिये क्योंकि जिसके शुभरूप अथवा अशुभरूप उत्कृष्ट गतिके प्रारम्भ होनेके कारणभूत कर्मोंके उपार्जन करनेकी शक्ति है उसीके दोनों बातोंकी योग्यता संघटित होती है। जिसके ऐसी शक्ति नहीं होती उसके ऐसी योग्यता भी नहीं होती। शास्त्रोंमें सुना है कि जिनके अवांतर गतिको उत्पन्न करनेवाले कर्म प्रतिनियत (नियमित) हैं और उन कर्मोंके निमित्तसे जिनके उत्पन्न होनेका स्थान भी नियामित है ऐसे समस्त नारकी अपने कर्मोंका फल भोग लेनेपर भी कर्मभूमिमें ही उत्पन्न होते हैं तथा गर्भज सैनी पर्याप्तक, पंचेंद्रिय, तिर्यंच और मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं। लिखा भी है—

"णिरयादो णिस्सरिदो णरतिरयगब्भसण्णि पज्जत्ते।
गब्भभवे उपज्जादि सत्तमणिरयाद तिरयेव।"

अर्थात्—नरकसे निकलकर यह जीव सैनी, पर्याप्तिक, गर्भज, मनुष्य, तिर्यंच ही होता है

तथा सातवें नरकसे निकलकर तिर्यंच ही होते हैं। इसीप्रकार प्रतिनियत कर्मोंके उदय होनेसे जिनके उत्पन्न होनेका उपपाद स्थान भी प्रतिनियत है ऐसे देव भी तिर्यंचलोकमें (मध्यलोकमें) ही उत्पन्न होते हैं तथा मध्यलोकमें भी एकेंद्रियोंमें भी उत्पन्न होनेका नियम है। कदाचित् यह कहो कि ऐसे ही कर्मोंके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य होनेसे ऐसी योग्यता होती है? सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उसकी योग्यताका विचार करते समय इस कथनसे कुछ भी इष्ट पदार्थकी सिद्धि नहीं होती। जिसमें ऊपरकी उत्कृष्ट गतिके सिद्ध करनेकी सामर्थ्य है उसमें नीचेकी उत्कृष्ट अशुभ गतिके सिद्ध करनेकी भी सामर्थ्य है। जैसे पुरुषमें मोक्ष जानेकी सामर्थ्य है तो सातवें नरक जानेकी भी सामर्थ्य है। यदि तुम स्त्रियोंमें उत्कृष्ट शुभ गतिकी सामर्थ्य मानते हो तो फिर उत्कृष्ट अशुभ गतिकी सामर्थ्य भी माननी चाहिये और यदि उत्कृष्ट अशुभ गतिकी (सातवें नरकमें जानेकी) सामर्थ्य मानोगे तो "इत्थीउ छट्ठीदो अहो न उपज्जंति" 'स्त्रियां छठे नरकसे आगे उत्पन्न नहीं होतीं' इत्यादि तुम्हारे ही आगमका विरोध होगा। इसलिए स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं इसमें कोई किसी तरहका सन्देह नहीं है।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि स्त्रियोंमें वाद आदि लब्धियोंका अभाव होने पर भी उनके लिए मोक्षकी प्राप्तिका अभाव सिद्ध नहीं होता सो भी केवल कहनामात्र है क्यों कि जिन अर्जिकाओंमें इस लोक सम्बन्धी वाद, विक्रिया और चारण आदि लब्धियोंको भी प्रगट करनेवाला विशेष संयम नहीं होता उन स्त्रियोंमें मोक्ष प्राप्त करानेवाला संयम होगा इस वातको भला कौन बुद्धिमान मान सकता है। क्योंकि यह बात विचारके सामने कभी टिक ही नहीं सकती। यदि इंद्रकी सभामें स्वयं बृहस्पति भी प्रतिवादी हों तो भी छल जाति निग्रह-

स्थान आदिका परिहारकर अपने तत्त्वोंके कहनेकी सामर्थ्य होनेको वादलब्धि कहते हैं। इंद्रादिके रूप बना लेनेकी शक्तिको विक्रिया लब्धि कहते हैं। आकाशमें चलनेकी शक्तिको चारण लब्धि कहते हैं। आदि शब्दके कहनेसे अक्षीणमहानस आदि लब्धियोंका समुदाय समझ लेना चाहिये। शास्त्रोंमें आर्जिकाओंके इन सब लब्धियोंको उत्पन्न करनेवाले विशेष संयमका कथन नहीं किया है। परन्तु पुरुषोंके लिए तो कहा है। कदाचित् यह कहो कि माषतुष आदि मुनियोंमें लब्धियोंको उत्पन्न करनेवाले विशेष संयमका अभाव था परन्तु तो भी उनमें मोक्ष प्राप्त होनेकी विशेष सामर्थ्य थी सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उन मुनियोंमें भी लब्धियोंको उत्पन्न करनेवाले विशेष संयमकी शक्तिका सद्भाव था। माषतुषमें भी वाद करनेकी तो शक्ति थी परन्तु मुनिकी निंदाके डरसे उनकी आवाज रुक गई थी इसलिये वे मुनि हो गए थे और माषतुषके समान (जिसप्रकार छिलकेसे दाल अलग है उसीप्रकार शरीरादिकसे आत्मा अलग है इसप्रकार) अपने आत्मतत्त्वको समझकर सात ऋद्धियोंसे परिपूर्ण होकर केवली हो गए थे। कदाचित् यह कहो कि ऋद्धियां विशेष संयमसे ही उत्पन्न होती हैं ऐसा शास्त्रोंमें नहीं लिखा है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऋद्धियां सब कर्मोंके क्षय होने आदि निमित्त कारणोंसे ही होती हैं। तथा कर्मोंका क्षय होना आदि सब संयमके लिए निमित्त कारण हैं। इसप्रकार ऋद्धियां विशेष संयमसे ही उत्पन्न होती हैं।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि स्त्रियोंके विशेष तपश्चरणकी सामर्थ्यसे उत्पन्न होनेवाले वाद आदि अतिशय नहीं होते हैं इसलिये उन स्त्रियोंके मोक्षकी प्राप्ति भी नहीं होनी चाहिये परंतु शास्त्रोंमें जिसप्रकार स्त्रियोंके लब्धि आदि अतिशयोंका अभाव बतलाया गया

है उसीप्रकार उनके मुक्तिका अभाव क्यों नहीं बतलाया वह भी बतलाना चाहिये था इत्यादि सो भी ठीक नहीं है क्योंकि शास्त्रोंमें जब स्त्रियोंके लिए मोक्ष प्राप्त करने योग्य विशेष संयम का ही निषेध लिखा है तो फिर इसीसे उनके मोक्षका अभाव सिद्ध होता ही है। शास्त्रोंमें यह बात प्रसिद्ध रीतिसे लिखी ही है कि मोक्षके कारणभूत निष्परिग्रह आदि संयमकी विशेष विधि पुरुषोंके लिये है स्त्रियोंके लिए तो उसका निषेध किया है। हेतुके अभाव होनेपर हेतु-मानकी संभावना कभी नहीं हो सकती। यदि हेतुके अभावमें भी हेतुमानकी संभावना मान ली जायगी तो फिर अतिप्रसंगका दोष आजायगा अर्थात् विना कारणके चाहे जिसकार्यकी उत्पत्ति हो जायगी। इसलिए कहना चाहिये कि स्त्रियोंके संयममात्र होनेपर भी वह संयम मोक्षका कारण नहीं होता जैसे तिर्यंच और गृहस्थोंका संयम मोक्षका कारण नहीं होता। स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे गृहस्थोंके समान सदा परिग्रहसहित रहती हैं। तथा स्त्रियोंका संयम मोक्षका कारण नहीं हो सकता क्योंकि वह स्त्रियोंका संयम नियमित विशेष ऋद्धियोंको कारण नहीं होता है। जो संयम विशेष लब्धियोंको उत्पन्न नहीं कर सकता वह कहीं भी तो निर्विवाद रीतिसे मोक्षका कारण प्रसिद्ध होना चाहिए क्योंकि ऐसी हालतमें ही उस दृष्टांतकी सामर्थ्यसे यहां स्त्रियोंमें भी वैसा ही निश्चय करनेकी कल्पना कर लेते ? विना ऐसा दृष्टांत देखे तो अति प्रसंगका दोष आता है अर्थात् जिस संयममें लब्धि-योंके प्रगट होनेकी भी सामर्थ्य नहीं है उससे यदि मोक्षकी प्राप्ति हो सकती हो तो फिर गृहस्थों को भी अपने एक देश संयमसे ही मोक्षकी प्राप्ति हो जानी चाहिये। परंतु होती तो नहीं है इसलिए स्त्रियोंके भी मोक्षकी प्राप्ति किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकती।

स्त्रियोंमें श्रुतज्ञान पूर्ण नहीं होता थोडा होता है इसलिये भी मोक्षकी प्राप्तिका अभाव सिद्ध होता है इस हेतुमें जो अनेकांतिकत्व दोष दिया अर्थात् इस हेतुको व्यभिचारी बतलाया था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसका खंडन तो श्रुतज्ञानकी शक्तिके प्रतिपादन करनेसे ही हो जाता है। अर्थात् जब उनमें पूर्ण श्रुतज्ञानकी ही शक्ति नहीं है तो फिर उनमें मोक्ष प्राप्त होनेकी शक्ति कहांसे हो सकती है। दूसरी बात यह है कि सामान्य पुरुषोंमें भी अधिक श्रुतज्ञानकी प्राप्ति होनेसे व्यभिचार दोष आ नहीं सकता। तथा स्त्रियोंको द्वादशांग श्रुतज्ञानका अधिकार भी नहीं है। दूसरी बात यह है कि श्रुतज्ञानके द्वारा मोक्षके कारण और अकारणमें कोई अधिकार नहीं है। फिर भला मोक्षकी प्राप्तिमें श्रुतज्ञानकी अपूर्णताका विचार करना बिल्कुल बेकायदा है। क्योंकि मोक्षकी प्राप्तिके लिए तो शक्तिकी ही प्रधानता है। और वह मोक्ष प्राप्त करने योग्य शक्ति शिष्टाचारमें निपुण ऐसे प्रतिष्ठित विशेष पुरुषोंने पुरुषोंमें ही बतलाई है क्योंकि पुरुषोंमें ही समस्त परीषहोंके सहन करनेकी समार्थ्य है, स्त्रियोंमें नहीं। इस तरहसे भी स्त्रियां मोक्षकी अधिकारिणी नहीं हैं।

कदाचित् यह कहो कि स्त्रियां तपश्चरण आदिका अनुष्ठान पूर्णरीतिसे नहीं कर सकतीं इससे भी मोक्षका अभाव सिद्ध नहीं होता सो भी व्यर्थ है। क्योंकि यह बात निश्चित है कि स्त्रियां तपश्चरणोंके पूर्ण अनुष्ठानको नहीं कर सकतीं। सांवत्सरिक (वार्षिक) आदि प्रतिक्रमण करनेका तो उन्हें अधिकार ही नहीं है, और छेदोपस्थापना आदि विशेष प्रायश्चित्तोंका तो उनके अभाव ही है इसलिए विशेष शुद्धिका अभाव होनेसे स्त्रियोंके मोक्षका भी अभाव सिद्ध होता है। लिखा भी है—

"आर्यायां स्याचप: सर्वं स्थापनापरिवर्जितम्। इति'।

अर्थात् "अर्जिकाओंके स्थापना—छेदोपस्थापनाको छोडकर सब तपश्चरण होते हैं। अर्जिकाओंके महाव्रतकी जाति बतलानेके लिए तथा उनकी परंपरा कार्यमें रखनेकेलिए उपचारसे ही महाव्रतोंके आरोपण करनेकी विधि बतलाई है। जिसप्रकार किसी बालकमें तेज होनेके कारण अग्निका उपचार कर लेते हैं परंतु तो भी वह बालक अग्निके समान जलाने की शक्ति नहीं रखता उसीप्रकार जो महाव्रतरूप संयम स्त्रियोंमें उपचारसे आरोपण किया गया है वह साक्षात् मोक्षरूप कार्यका कारण कभी नहीं हो सकता। लिखा भी है—

देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यंते बुधैस्ततः।
महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः॥

अर्थात् " देशव्रतको धारण करनेवाले विद्वान लोग उन स्त्रियोंमें श्रेष्ठ जाति बतलानेके लिये उपचारसे महाव्रतोंका आरोपण करते हैं।" इसतरह यह बात सिद्ध हो गई कि स्त्रियोंमें महाव्रतोंकी गणना उपचारसे है। वे पूर्ण तपश्चरणोंको पालन नहीं कर सकतीं इसलिये वे पुरुषोंसे अवश्य हीन हैं। तथा इसलिये वे मोक्षकी अधिकारिणी नहीं हैं।

इसके सिवाय स्त्रियां पुरुषोंके द्वारा वंदनीय नहीं है इसलिये वे पुरुषोंसे हीन नहीं गिनी जासकतीं इत्यादि जो विपक्षरूपसे पूर्वपक्ष कहा था सो भी विना पढे लिखेके द्वारा कहे हुएके समान है। क्योंकि यह बात तो तुमने भी हेतुरूपसे स्वीकार करली है स्त्रियां (अर्जिकाएं) साधु लोगोंके द्वारा वंदनीय नहीं हैं। फिर भला इसप्रकारके साधनके अधिकरणमें ऊपर कहा हुआ दोष (जो पूर्वपक्षमें कहा गया है) किसप्रकार आसकता है? इसीबातको हेतुपूर्वक कहते

है। स्त्रियां वा अर्जिकाएं मोक्षके कारणभूत संयमको धारण नहीं करतीं क्योंकि वे श्रावकोंके समान साधुओंके द्वारा कभी बंदनीय नहीं होतीं। भावार्थ— साधु लोग जैसे श्रावकोंको नमस्कार नहीं करते उसीप्रकार वे अर्जिकाओंको भी नमस्कार नहीं करते इसालिये जैसे श्रावक मोक्षके कारणभूत संयमको धारण नहीं कर सकते उसी प्रकार आर्जिकाएं भी मोक्षके कारणभूत संयमको धारण नहीं कर सकतीं। कदाचित् यह कहो कि यह हेतु असिद्ध है सो भी नहीं है क्योंकि—

" वारिससयदिक्खियाए अज्जाए अज्जदिक्खिओ साहू।
अभिगमणबंदणणमसणाविणएण सो पुज्जो ॥ "

अर्थात् ' यदि सौ वर्षकी दीक्षित भी अर्जिका हो वह भी आजके दीक्षित हुए साधुके (उनके आनेपर) सामने जाती है बंदना करती है नमस्कार करती है और विनयपूर्वक पूजा करती है। ' इत्यादि तुम्हारे शास्त्रोंमें लिखा है।

कदाचित् यह कहो कि स्त्रियां पुरुषोंके द्वारा बंदनीय नहीं हैं इसलिए हीन हैं मोक्षकी अधिकारिणी नहीं हैं यह हेतु गणधरादिके द्वारा व्यभिचारी है क्योंकि अरहंतदेव गणधरोंकी भी बंदना नहीं करते हैं इसलिए गणधर भी पुरुषोंसे हीन और मोक्षके अनधिकारी होने चाहिए। परन्तु तुम्हारा यह कहना मदरूपी मद्यके आस्वादनके समयका है। अर्थात् ठीक नहीं है क्योंकि अरहंत भगवान तीर्थंकर नामकर्मके अतिशय पुण्यके कारण तथा सबसे उत्कृष्ट पद प्राप्त होनेके कारण समस्त तीनों लोकोंके द्वारा बंदनीय होते हैं इसीलिए वे किसीको बंदना नहीं करते तथा तीनों लोकोंमें उस पदसे अधिक और कोई पद भी नहीं है, जिसे कि वे अरहंत

बंदना करें। परन्तु गणधरोंके वैसी पुण्य प्रकृतियोंका (तीर्थंकर पुण्यप्रकृतियोंका) अभाव होनेसे उस पदकी—अरहंत पदकी प्राप्ति भी नहीं है इसलिए वे अरहंतके द्वारा बंदनीय नहीं होते। मोक्ष जानेवाला चाहे तो तीर्थंकर होकर मोक्ष जाय और चाहे विना तीर्थंकर हुए मोक्ष जाय किन्तु मोक्षकी इस सामग्रीमें (अरहंत पदमें) कभी अंतर नहीं पडता है । परंतु आर्जिकाओंके लिए तो इस सामग्रीमें अन्तर पड जाता है अर्थात् उन्हें अरहंत पद प्राप्त नहीं होता क्योंकि उनके मोक्षके कारणीभूत रत्नत्रयका अभाव है इसलिए कहना चाहिए कि स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि नपुंसकके समान वे मुनि गृहस्थ और देवोंके द्वारा बंदनीय पदके योग्य नहीं होतीं इसीका खुलासा आगे लिखते हैं। मुनियोंके द्वारा बंदना करने योग्य पद दो प्रकारके हैं एक पर (सबसे उत्कृष्ट) और दूसरा अपर अर्थात् उससे कुछ हीन । उनमें से पहिला पद तो अत्यंत निर्दोष और अत्यंत मनोहर ऐसा तीर्थंकर पद है और दूसरा आचार्य उपाध्याय आदिका पद है। ये दोनों ही पद पुरुषोंको ही प्राप्त होते हैं। ये दोनों पद न तो स्त्रियोंको वा आर्जिकाओंको प्राप्त होते हैं और न गृहस्थोंको होते हैं। इसी तरह देवोंके द्वारा बंदना करने योग्य पद भी दो प्रकारके हैं—एक पर (उत्कृष्ट) और दूसरा अपर। इन दोनोंमेंसे पहला पद तो चक्रवर्ती अथवा इंद्रका है और दूसरा महामंडलेश्वर अथवा सामानिक देवोंका है। परन्तु ये दोनों पद भी पुरुषोंको ही प्राप्त होते हैं स्त्रियोंको नहीं। और देखो, प्रत्येक घरमें पुरुषोंकी ही प्रभुता रहती है स्त्रियोंकी नहीं। पिता चाहे विद्यमान हो या न हो परन्तु सब कार्योंमें पुत्रका ही अधिकार होता है चाहे वह पुत्र बदसूरत ही क्यों न हो अथवा छोटा ही क्यों न हो परंतु पुत्रियोंको वह अधिकार कभी प्राप्त नहीं होता चाहे वे रूपवती हों और चाहे

बडी हों। इसलिए सांसारिक लक्ष्मीमें भी जिन स्त्रियोंको कोई अधिकार नहीं है उन्हें मोक्ष लक्ष्मीका अधिकार प्राप्त हो जायगा ? इससे बढकर भला लोकसे भी बाहर आश्चर्यकी वात कौनसी हो सकती है ?

इसी कथनसे 'कोई लोग स्त्रियोंका स्मरण नहीं करते केवल इसीसे उनकी मुक्तिका अभाव सिद्ध नहीं होता' इत्यादि कथनका खंडन भी समझ लेना चाहिये। क्योंकि पुरुष कभी स्त्रियोंका (ध्यानादिकमें) स्मरण नहीं करते। कदाचित् यह कहो कि स्त्रियां भी कभी पुरुषोंका स्मरण नहीं करतीं और न पुरुष ही कभी स्त्रियोंका स्मरण करते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कहनेपर फिर सर्वज्ञदेवका स्मरण भी किसीको नहीं करना चाहिये ? कदाचित् यह कहो कि कोई कोई साधु यदि ध्यानमें वैसी स्त्रियोंका ध्यान करें तो कोई विरोध नहीं आता सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जो कोई स्त्रियोंका स्मरण करेगा उसे सरागी अवश्य होना पडेगा। दूसरी वात यह है कि जो योगी अपने शुद्ध आत्माके ध्यानमें तल्लीन हैं वे कभी स्त्रियोंका स्मरण नहीं कर सकते। यदि कदाचित् वे भी स्त्रियोंका स्मरण करें तो लंपट पुरुषोंके समान उनके शुद्ध आत्माके ध्यानकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। क्योंकि सब जगह सर्वज्ञ अथवा सर्वज्ञके प्रतिबिंबका अर्थात् पुरुषविशेषका ही ध्यान इष्ट माना गया है स्त्रियोंका ध्यान कभी किसीने इष्ट नहीं माना। इसलिए भी स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि स्त्रियोंमें बडी बडी ऋद्धियां नहीं होतीं केवल इसीसे वे पुरुषोंसे हीन नहीं गिनी जा सकतीं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि रत्नत्रयरूप जो आध्यात्मिक ऋद्धियां हैं उनकी अपेक्षासे स्त्रियां पुरुषोंसे सदा ही हीन रहतीं हैं। तथा इसका

भी कारण यह है कि रत्नत्रयकी परम उत्कृष्टताका अभाव स्त्रियोंमें पहले ही प्रतिपादन किया जा चुका है। स्त्रियोंके अंतके तीन संहनन होते हैं, उत्कृष्ट संहनन नहीं होते इसलिये उनके रत्नत्रयकी परम प्रकर्षता कभी हो ही नहीं सकती है। स्त्रियोंके संहनन हीन ही होते हैं इसमें नीचे लिखे अनुमान और आगम प्रमाण है। अनुमान—स्त्रियां पुरुषोंसे सदा हीन संहननवाली होती हैं क्योंकि उनका अधिकार पुरुषोंसे सदा हीन है। जैसे नपुंसक। कदाचित् यह कहो कि यह हेतु असिद्ध है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि किसी कामकी प्रेरणा करना, किसी कामको रोकना और हटाना वा भगाना आदि क्रियाएं पुरुष ही स्त्रियोंसे कराते हैं। इन सब क्रियाओंको स्त्रियां पुरुषोंसे नहीं करातीं। लिखा भी है "सारणवारणचोदनाई पुरुसो करइ ण हु इत्थीति अर्थात् किसी कामकी प्रेरणा किसी कामको रोकना और हटाना वा भगाना इन सब कामोंको पुरुष ही कराते हैं स्त्रियां नहीं। कदाचित् यह कहो पुरुष भी स्त्रियोंसे हीन होते हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि पुरुष सब जगह सब कामोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं। तथा उनकी श्रेष्ठता इसीसे समझ लेना चाहिए कि धर्मकी उत्पत्ति पुरुषोंसे ही होती है श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा ही धर्मका उपदेश दिया जाता है और संसारभरमें मनुष्योंका ही प्रभुत्व माना जाता है। लिखा भी है—

"धम्मो पुरिसप्पभवो पुरिसवरदेसिओ हवे धम्मो।
लोयम्मि पहू पुरिसो तम्हा लोगोत्तमो पुरिसो॥"

अर्थात् धर्म पुरुषोंसे ही प्रगट होता है श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा ही धर्मका उपदेश दिया जाता है और संसारभरमें पुरुष ही प्रभु माना जाता है इसलिए संसारभरमें पुरुष ही उत्तम है।

दूसरी बात यह है कि संसारभरमें वाह्य अभ्यंतर जितनी श्रेष्ठ विभूतियां दृष्टिगोचर होती हैं उनमेंसे स्त्रियोंको पूर्ण विभूति अथवा अपूर्ण विभूति कोई भी प्राप्त नहीं होती।

कदाचित् यह कहो कि स्त्रियोंके बडी बडी ऋद्धियां [वाह्य विभूतियां] नहीं होतीं इसलिए वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकतीं तो फिर गणधर आदिकोंको भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होनी चाहिये। क्योंकि तीर्थंकरके होनेवाली बडी भारी लक्ष्मीसे (समवसरणादि विभूतिसे) गणधरादिक हीन ही हैं। वाह्य लक्ष्मीके द्वारा हीनतामें उनमें और स्त्रियोंमें कोई विशेषता नहीं है इसलिए गणधरादिकोंको भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होनी चाहिये। परंतु यह कहना भी विचारपूर्वक नहीं है क्योंकि इस विवादमें किसी व्यक्तिके भेदसे विधि निषेध करना उचित नहीं है पुरुषोंका समूह बडी भारी लक्ष्मीका स्वामी होता है और स्त्रियोंका समूह नहीं होता इसलिए स्त्रियोंका निषेध होनेसे पुरुषोंको ही मोक्षकी प्राप्ति स्वीकार करनी चाहिये। किसी खास व्यक्तिमें तीर्थंकरादिककी बडी विभूति न होनेपर भी उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाय तो फिर उसके द्वारा व्यभिचारका निरूपण करते हुए उसके साथ स्त्रियोंकी समानताका प्रतिपादन करना ठीक नहीं है यदि किसी एक राजपुत्रको राज्यकी प्राप्ति हो जाय तो उसके अन्य राजपुत्रोंको राज्यकी प्राप्ति नहीं होती ऐसी हालतमें यद्यपि वे अन्य राजपुत्र उस राज्य पानेवाले राजपुत्रसे हीन हैं तथापि वे पुत्रियोंके समान नहीं हैं क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि पुत्रोंके समूहसे पुत्रियोंका समूह संसारभरमें और सब व्यवहारोंमें अत्यंत भिन्न माना गया है। इसलिए सिद्ध हुआ कि स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि वे नपुंसकोंके समान पुरुषोंसे हीन हैं। कदाचित् यह कहो कि पुरुषोंसे स्त्रियोंका हीनपना असिद्ध है सो भी ठीक नहीं है

१६

क्योंकि इसका (स्त्रियोंके हीनपनेका) समर्थन तो पहले बहुत अच्छी तरहसे कर चुके हैं। कदाचित् यह कहो कि तीनों लोकोंके प्राणियोंमें जिसका यश गाया जा रहा है ऐसी तीर्थंकरमें होनेवाली विभूति जब स्त्रियोंमें विद्यमान है तब फिर भला वे पुरुषोंसे हीन किसप्रकार हो सकती हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंमें तीर्थंकरकी विभूतिका कहना बडे ही आश्चर्यकी बात है। अरे! जिन स्त्रियोंमें आचार्य उपाध्याय आदि तथा राजा महराजा मांडलिक केशव बलभद्र चक्रवर्ती आदिके पद और इंद्र सामानिक आदिके पद भी नहीं सुने जाते हैं उन स्त्रियोंमें समस्त तीनों लोक जिसकी सेवा करते हैं ऐसे तीर्थंकरके परम पदकी प्राप्ति कहना कोई अलौकिक बात है संसारभरमें तो इसे कोई मान नहीं सकता। दूसरी बात यह है कि जिस विषयमें अभी विवाद चल रहा है तुमने उसीका उदाहरण दे डाला? यह कैसे बन सकता है। यह बात आज भी देखनेमें आती है कि यदि सौ पुत्रोंके बाद भी कोई पुत्री हो तो भी उसका कोई उत्कट हर्ष नहीं मनाया जाता परन्तु पुत्र चाहे कितने ही उत्पन्न हों तो भी प्रत्येक पुत्रके उत्पन्न होनेपर वैसा ही उत्कट हर्ष मनाया जाता है। फिर भला तीर्थंकर पदको लेकर स्त्रीरूपसे जन्म लेनेवालोंके लिए वह उत्कट हर्ष किस प्रकार मनाया जा सकेगा? इसके सिवाय एक बात यह भी है कि यदि वह (मल्लीबाई तीर्थंकर) स्त्री है तो फिर स्त्रीरूपमें ही उसकी प्रतिमा बनाकर पूजा आराधना क्यों नहीं करते? इसलिए स्त्रियोंके बडी २ ऋद्धियां कभी नहीं हो सकतीं और इसीलिए वे पुरुषोंसे हीन समझी जाती हैं।

इसके आगे तुमने यह जो कहा था कि स्त्रियोंमें मायाकी अधिकता होने पर भी उनमें

मोक्षकी प्राप्तिका अभाव सिद्ध नहीं होता आदि सो भी ठीक नहीं है क्योंकि स्त्रियोंमें माया अधिक होनेसे वे मोक्षके कारणभूत संयमको कभी ग्रहण नहीं कर सकतीं। लिखा भी है—

"ठाण निसेज्ज विहारो धम्मुवदेसो सभावदो णियदो।
अरहंताणं काले मयाचारोव्व इत्थीणं ॥" इति वचनात्।

अर्थात्—"जिसप्रकार स्त्रियोंमें मायाचारी स्वाभाविक नियत होती है उसीप्रकार अरहंतोंके अपने समय पर विशेष विशेष स्थानोंमें विहार करना और धर्मोपदेश देना स्वाभाविक नियत रहता है।" इसप्रकार आगममें लिखा है। और भी कहा है—

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥

अर्थात्—झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अत्यंत लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये दोष स्त्रियोंमें स्वाभाविक होते हैं। और भी लिखा है—

"आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययाणाम्।
स्वर्गं द्वारस्य रोधं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरंडं
स्त्रीयंत्रं केन सृष्टं स्वमृतविषमयं प्राणिलोकस्य पाशः ॥

अर्थात्—जो संशयोंका भंवर है जिसके संदेहोंकी थाह नहीं मिलती, जो अविनयका एक भवन है, साहसोंका नगर है, दोषोंका एक अच्छा खजाना है, सैकडों छल कपटोंसे भरा हुआ है, अविश्वासका क्षेत्र है, स्वर्गके द्वारको रोकनेवाला है, नरकरूपी नगरके सम्मुख ले

जानेवाला है, सब तरहकी मायाचारीका पिटारा है, अपने मृत्युके लिये विषरूप है और समस्त
प्राणियोंके फसानेके लिये एक जाल है ऐसा यह स्त्रीरूपी यंत्र भला किसने बनाया है ?" देखो !
जहां मायाचारी अधिक होती है उसे कभी मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे नारद आदिकों
को मायाचारी अधिक होनेसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। यह उदाहरण असिद्ध भी नहीं है
क्योंकि मायाचारी अधिक होनेसे ही नारद उस भवसे मोक्ष नहीं जा सकते। मायाचारी अधिक
होनेसे ही शास्त्रोंमें उनका नरकमें जाना लिखा है। सो ही शास्त्रोंमें लिखा है—

'कलहप्पिया कदाई धम्मरदा वासुदेवसमकाला।
भव्वा णिरयगदिं ते हिंसादोषेण गछंति' ॥ इति।

अर्थात्—नारद बडे कलहप्रिय होते हैं कभी कभी धर्ममें भी लीन रहते हैं। वे भव्य होते
और वासुदेवके समयमें होते हैं परंतु हिंसाके दोषसे वे नरकमें ही जाते हैं। इसलिये सिद्ध हुआ
कि मोक्षके कारणीभूत ज्ञान आदिकी परम प्रकर्षता (उत्कृष्ट केवलज्ञान श्रुतज्ञान आदि)
स्त्रियोंमें नहीं है क्योंकि वह परम प्रकर्षता है। जो जो परम प्रकर्षता होती है वह स्त्रियोंमें नहीं
होती जैसे सातवें नरकमें जानेके कारणीभूत अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता नहीं होती।
इसमें इतना और विशेष है कि श्वेतांबरोंके माने हुए कथनके अनुसार स्त्रियोंको सातवें नरक
में जानेके कारण अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षता मोक्षके कारणीभूत परम प्रकर्षताके द्वारा
खींचली गई है—निकाल ली गई है इसलिये सातवें नरकमें जानेके कारण अशुभ परिणामोंका
निषेध कर इन्होंने स्वयं मोक्षके कारणीभूत परम प्रकर्षताका निषेध कर डाला है। भावार्थ—

जब परम प्रकर्षताका निषेध किया है तो मोक्षका कारणभूत परमप्रकर्षताका निषेध अपने आप हो जाता है अथवा ऊपर लिखे अनुमानमें सातवें नरकमें जानेके कारण अशुभ परिणामोंकी परम प्रकर्षताका अभाव होनेरूप हेतुसे स्त्रियोंमें मोक्षके कारणीभूत परमप्रकर्षताका निषेध नहीं करते किंतु स्त्रियोंमें परमप्रकर्षता न होनेके कारण और इसी परमप्रकर्षताका अभावरूप हेतुके साथ उदाहरण में भी साध्य साधनकी व्याप्ति मिल जानेके कारण उनमें मोक्षका निषेध करते हैं। कदाचित् यह कहो कि यह हेतु व्यभिचारी है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि संसारमें जितनी परम प्रकर्षताएं हैं उनमेंसे स्त्रियोंमें कोई भी नहीं है सबका अभाव है। कदाचित यह कहो कि मोहनीय कर्मकी स्थितिकी परम प्रकर्षता और स्त्रीवेद आदिकी परमप्रकर्षता स्त्रियोंमें विद्यमान है इसलिए यह हेतु व्यभिचारी है, सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार स्त्रियोंमें आयुकी परमप्रकर्षताका अभाव है उसीप्रकार उनमें मोहनीयकी परम प्रकर्षताका और स्त्रीवेदकी परम प्रकर्षताका अभाव है। जिसप्रकार स्वर्ग तथा नरककी आयुकी परम प्रकर्षता स्त्रियोंमें नहीं है उसीप्रकार प्रकरणमें आए हुए मोहनीयकी परम प्रकर्षता भी स्त्रियोंमें नहीं है। जिसप्रकार मोहनीयकी परम प्रकर्षता पुरुषोंमें है उसी प्रकार स्त्रियोंमें मोहनीयकी परम प्रकर्षता नहीं है यदि स्त्रियोंमें भी मोहनीयकी परम प्रकर्षता मानी जायगी तो फिर उनके लिए सातवें नरकमें जाना भी अनिवार्य हो जायगा। हां! स्वर्गोंमें जिसप्रकार वैक्रियिककी परम प्रकर्षता है उसी प्रकार स्त्रीवेदकी परम प्रकर्षता भी है यह बात वादी प्रतिवादी दोनों मानते हैं। इसलिए इसप्रकार कहना चाहिये कि जिसप्रकार मायाचारीकी परम प्रकर्षताको छोडकर स्त्रियोंमें अन्य परम प्रकर्षताएं नहीं हैं उसी प्रकार स्त्रीवेदकी परम प्रकर्षताको भी छोडकर स्त्रियोंमें अन्य परम प्रकर्षताओंका अभाव है।

भावार्थ—मायाचारी और स्त्रीवेदकी परम प्रकर्षताको छोडकर स्त्रियोंमें बाकीकी समस्त परम प्रकर्षताओंका अभाव है। इसलिये मोक्षका कारण जो ज्ञानादिककी परम प्रकर्षता है वह स्त्रियोंमें नहीं है यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि जिसप्रकार ज्ञानादिककी उत्कृष्टता अनेक प्रमाणोंसे पुरुषोंमें पाई जाती है उसी प्रकार वह ज्ञानादिककी उत्कृष्टता स्त्रियोंमें नहीं मिलती। यदि ज्ञानादिककी परम प्रकर्षता स्त्रियोंमें मानोगे तो फिर नपुंसकोंमें भी माननी पडेगी और फिर ऐसी हालतमें नपुंसकोंको भी मोक्षकी प्राप्ति माननी पडेगी।

कदाचित् यह कहो कि उत्तमता वा हीनता मोक्षका कारण नहीं है किंतु रत्नत्रय ही मोक्ष का कारण है इसीलिए हीनाधिक होनेपर भी गुरु शिष्य दोनों ही मुक्त होते हैं। यद्यपि शिष्य आचार्योंसे हीन है और आचार्य उनसे उत्तम हैं तथापि दोनोंको ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसीप्रकार आर्जिकाओंको भी मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी परन्तु यह कहना भी केवल पक्षपात- मात्र है क्योंकि वह विचारके सामने टिक नहीं सकता। गुरु शिष्य यद्यपि हीनाधिक हैं तथापि उनमें मोक्षकी कारणीभूत सामग्री सब एकसी है इसलिए उन दोनोंको विना किसी विशेषता के मोक्षकी प्राप्ति होती है परन्तु स्त्री पुरुषोंमें तो मोक्षकी कारणभूत सामग्री एकसी नहीं है यदि स्त्री पुरुषोंमें भी मोक्षकी कारणभूत सामग्री सब एकसी होती तभी उन दोनोंको विना किसी विशेषता (विना किसी अंतरके) मोक्षकी प्राप्ति हो जाती ? परन्तु मोक्षकी कारणभूत सामग्री तो स्त्रियोंमें है नहीं क्योंकि स्त्रियोंमें मोक्षकी कारणभूत सामग्रीका निषेध पहले बडे विस्तारके साथ कहा जा चुका है। दूसरी बात यह है कि रत्नत्रयमात्रके होनेसे ही मोक्षकी कारणभूत सब सामग्री प्राप्त नहीं हो जाती क्योंकि यदि रत्नत्रयमात्रके होने मात्रसे ही मोक्षकी

सब सामग्री प्राप्त हो जाय तो फिर गृहस्थोंको भी मोक्षकी प्राप्ति हो जानी चाहिये परंतु होती तो नहीं है क्योंकि जो कार्य प्रचंड किरणोंको धारण करनेवाले सूर्य मंडलसे सिद्ध हो सकता है वह कार्य जिसमें केवल स्वप्नमात्रका तेल भरा हुआ है ऐसे दीपकसे किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? उस दीपकमें इतनी सामर्थ्य कहांसे हो सकती है? इसलिये स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति कभी सिद्ध नहीं हो सकती।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि गृहस्थ अवस्थामें भी स्त्रियां बडी बलशालिनी होती हैं आदि सो भी सब मिथ्या है क्योंकि अनेक और कठोरसे कठोर दुर्धर परीषहोंका सहनकर समस्त कर्मरूपी मलको नाश करनेकी सामर्थ्यरूप महा बल जैसा पुरुषोंमें सिद्ध होता है। अर्थात् समस्त घोर परीषहोंको सहन करते हुए समस्त कर्मोंको नाश करनेकी सामर्थ्य जैसी पुरुषोंमें सिद्ध होती है वैसी सामर्थ्य वा वैसा महा बल स्त्रियोंमें तीनों कालोंमें भी कभी नहीं हो सकता। सीता आदिकोंको जो सबसे उत्कृष्ट बतलाया गया है और सर्वोत्कृष्ट होनेके कारण ही उन्हें महा बलशालिनी बतलाया है सो केवल स्वर्गकी अपेक्षासे बतलाया है पुरुषोंकी अपेक्षासे नहीं। यदि पुरुषोंके समान ही उन्हें महा बलशालिनी मानी जाय तो फिर रावणादिके द्वारा सीता आदिका हरण किसप्रकार हुआ और जब वे महाबलशालिनी ही थीं तो फिर राम आदिके द्वारा रावण आदिका नाश हो जानेपर क्यों छुडाई गईं।

इसलिये यह बात निश्चित है कि स्त्रियोंकी सामर्थ्य पुरुषोंके समान कभी सिद्ध नहीं हो सकती। इसीलिये किसी भी कार्यमें वे पुरुषोंके समान बल नहीं रखतीं, फिर भला सबसे अधिक बलके द्वारा सिद्ध करने योग्य मोक्षके कारण और उनकी पूर्ण सामग्री उन स्त्रियोंको किस

प्रकार प्राप्त हो सकती है ? दूसरी बात यह है कि स्त्रियोंका शरीर मोक्षके कारण और उनकी संपूर्ण सामग्रीका आश्रय कभी नहीं हो सकता ? क्योंकि वह नारकी आदिकोंके शरीरके समान महा पापोंसे (पाप कर्मोंके उदयसे) बना हुआ होता है । इसीतरह स्त्रियोंका शरीर मोक्षके कारणभूत संयमका साधन भी नहीं हो सकता क्योंकि स्त्रियोंके शरीरके पांच स्थानोंमें [कुच कांख योनि] पंचेंद्रिय जीव उत्पन्न होते रहते हैं और उनकी विराधना सदा होती रहती है । फिर भला उनके संयमका साधन किसप्रकार हो सकता है । इसके सिवाय एक बात यह भी है कि जो शरीर समस्त कर्मोंके नाश करनेके प्रारंभका कारण होता है वह कभी पंचेंद्रिय जीवोंकी विराधनाका आश्रय नहीं हो सकता। अथवा जो शरीर पंचेंद्रिय जीवोंकी विराधनाका आश्रय होगा वह समस्त कर्मोंके नाश करनेके प्रारंभका कारण कभी नहीं हो सकेगा । इसके सिवाय एक हेतु यह भी है " स्त्रियोंका शरीर समस्त कर्मोंके नाश करनेके प्रारंभका कारण कभी नहीं हो सकता क्योंकि वह मिथ्यात्व कर्मके सहायक ऐसे महा पाप कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है । जैसे नारकी आदिकोंका शरीर । भावार्थ— जैसे नारकियोंका शरीर महा पाप कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होता है और इसीलिये वह समस्त कर्मोंके नाश करनेका कारण नहीं होता इसी तरह स्त्रियोंका शरीर भी महापाप कर्मोंके उदयसे बनता है इसलिए वह भी समस्त कर्मोंके नाश करनेके प्रारम्भका कारण कभी नहीं हो सकता । स्त्रियोंके शरीरको उत्पन्न करनेवाला कर्म बडा ही पाप कर्म है क्योंकि मिथ्यादृष्टियोंके सिवाय अन्यके द्वारा वह उपार्जन नहीं किया जा सकता ।

कदाचित् यह कहो कि सासादन सम्यग्दृष्टी जीव भी स्त्रियोंके शरीरका (स्त्रियोंके शरीर

को उत्पन्न करनेवाले कर्मोंका) उपार्जन कर सकता है फिर मिथ्यादृष्टी ही उसका उपार्जन कर सकता है यह बात कैसे कहते हो ? सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सासादन गुणस्थान सम्यग्दर्शन का नाश करनेवाला है और मिथ्यात्वके सन्मुख करनेवाला है इसलिए उसे मिथ्यात्वके ही नामसे कह दिया गया है। स्त्रीपर्यायको उत्पन्न करनेवाले कर्मोंको सम्यग्मिथ्यादृष्टी भी उपार्जन नहीं कर सकता फिर भला सम्यग्दृष्टि उसका उपार्जन कैसे कर सकता है। क्योंकि स्त्रीवेदका बंध सासादन गुणस्थान तक ही होता है। आगे नहीं। लिखा भी है—

"विदियगुणे अणत्थी णति दुब्भातिसंठाणसंहादिचउक्कं।
दुग्गमणच्छी णीचं तिरिय दुगुज्जो व तिरियाओ ॥"

अर्थात्–संसारी प्राणी स्त्रीपर्यायमें मिथ्यात्व परिणामोंसे ही उत्पन्न होते हैं सम्यग्दृष्टी प्राणी स्त्रीपर्यायमें कभी उत्पन्न नहीं होते। लिखा भी है—

"छसु हिट्ठिमासु पुढविसु जोइसवणभवणसव्व इत्थीसु।
वारसु मिच्छुव वादे सम्माइट्ठी ण उपज्जदि ॥"

अर्थात्–सम्यग्दृष्टी जीव अंतके छह नरकोंमें, ज्योतिष्क भुवनवासी व्यंतरोंमें, सब तरह की स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता है। इस हिसाबसे भी स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

इसके सिवाय तुमने यह जो कहा था कि "कोई कोई मनुष्योंकी स्त्रियां मुक्त हो जाती हैं क्योंकि उन्हें मोक्षके पूर्ण कारणोंकी प्राप्ति हो जाती है सो उन्मत्त पुरुषके कहनेके समान है क्योंकि स्त्रियोंके मोक्षके समस्त कारण स्वरूप रत्नत्रयकी संभावना स्वप्नमें भी कभी निरूपण

नहीं की जा सकती। स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती क्योंकि उनके गृहस्थोंके समान वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्यागरूप निर्ग्रंथपना कभी संभव नहीं हो सकता स्त्रियोंके वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंके त्यागरूप निर्ग्रंथपनेका होना नितांत असंभव है क्योंकि उनके गृहस्थोंके समान वाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रह देखे जाते हैं। इसलिये वे कभी मोक्षकी अधिकारिणी नहीं हो सकतीं। दूसरी बात यह है कि मोक्षकी प्राप्ति वाह्य अभ्यंतर दोनों कारणोंसे होती है क्योंकि वह एक कार्य है। जो जो कार्य होते हैं वे सब वाह्य अभ्यंतर दोनों कारणोंसे उत्पन्न होते हैं जैसे उडदोंका पकना। मोक्ष भी एक कार्य है इसलिए वह वाह्य अभ्यंतर दोनों कारणोंसे उत्पन्न होता है। मोक्षप्राप्तिका वाह्य अभ्यंतर कारण आर्किचन्य (परिग्रहोंका त्याग) है। यदि उस आर्किचन्यका अभाव होते हुए भी मोक्षकी प्राप्ति मान ली जायगी तो फिर तुम्हारे द्वारा (श्वेतांवरोंके द्वारा) दिया हुआ (स्त्रियोंके मोक्षके पूर्ण कारणोंकी प्राप्तिरूप) हेतु भी असिद्ध हो जायगा। अर्थात्–तुमने जो स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति सिद्ध करनेके लिए यह हेतु दिया है कि उनके मोक्षके पूर्ण कारणोंकी प्राप्ति होती है सो भी असिद्ध हो जायगा और उस हेतुके असिद्ध होनेसे स्त्रियोंके मोक्षकी प्राप्तिका अभाव सिद्ध हो जायगा।

इसके आगे तुमने जो यह हेतु कहा था कि मनुष्य पर्यायकी स्त्री जाति किसी किसी व्यक्तिके द्वारा मोक्षके कारणभूत रत्नत्रयोंको धारण करती है अर्थात्–किसी स्त्रीके पूर्ण रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है क्योंकि पुरुषके समान उसे दीक्षा धारण करनेका अधिकार है। सो भी असंभव है क्योंकि स्त्रियोंमें (आर्जिकाओंमें) उपचारसे ही महाव्रतका आरोपण किया गया है साक्षात् नहीं। यदि आर्जिकाओंके साक्षात् महाव्रतोंका विधान करोगे तो फिर वे साधुओंके

द्वारा बंदनीय भी होनी चाहिये। परंतु साधु लोग उन्हें कभी नमस्कार नहीं करते इसलिए पींछी कमंडलु आदि चिन्होंको धारण कर लेनेपर भी आर्जिकाओंके साक्षात् महाव्रतका अभाव होनेसे मोक्षका अभाव ही सिद्ध होता है। आर्जिकाएं वस्त्रोंको धारण करती हैं इसलिये उनके साक्षात् महाव्रतरूप संयम कभी बन ही नहीं सकता है। यदि वस्त्र मैला हो जायगा तो उसे धोना पडेगा तथा वस्त्रके धोनेमें जल आदिका आरम्भ करना ही पडेगा इसलिये ऐसी हालत में उनके कभी संयम नहीं बन सकेगा। यदि वस्त्र खो जायगा या फट जायगा तो याचना करनेके कारण दीनता धारण करनी पडेगी और दीनता धारण करनेसे शुद्ध ध्यानकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी। जब शुद्ध ध्यानकी प्राप्ति नहीं हो सकेगी तो फिर उसे मोक्षकी प्राप्ति भला कैसे हो सकेगी। यही बात दूसरे ग्रंथोंमें भी लिखी है—

म्लाने क्षालनतः कुतः कृतजलाद्यारंभतः संयमो नष्टे व्याकुलचित्तताथ महतामप्यन्यतः प्रार्थनम्।
कोपीनेऽपि हृते परैश्च झगिति क्रोधः समुत्पद्यते तन्नित्यं शुचिरागहृत्समवतां वस्त्रं ककुम्मंडलम् ॥

भावार्थ—यदि वस्त्र मलिन हो जायगा तो उसे धोना पडेगा तथा धोनेमें जल आदिका आरम्भ करना पडेगा फिर भला उनके संयम किसप्रकार बन सकेगा। यदि वह नष्ट हो जायगा तो चित्तमें बडी ही व्याकुलता उत्पन्न होगी तथा दूसरेसे मांगना पडेगा। यदि कोई अन्य पुरुष कोपीन भी चुरा ले जाता है तो फिर बहुत शीघ्र क्रोध उत्पन्न हो आता है फिर भला स्त्रियोंके वस्त्रकी तो बात ही क्या है इसलिए जो सदा पवित्र रहता है और राग आदिका नाश करने-वाला है वही दिग्मंडल (दिशाओंका समूहरूपी) वस्त्र समता धारण करनेवाले मुनियोंके श्रेष्ठ है। अरे! देवपर्यायमें भी जिन्हें उत्कृष्ट स्थितिकी (अधिक आयुष्यकी) प्राप्ति नहीं होती

उन्हें मोक्ष पदकी प्राप्ति हो जायगी यह वात एक बडी ही न्यायकी मूर्खताको दिखलानेवाली है। सौधर्मादिक स्वर्गोंमें देवोंकी आयु दो सागर आदिकी होती है देवियोंकी वही स्वर्गोंमें पांच पल्यसे भी कम होती है। अरे ! जिन स्त्रियोंको इंद्र सामानिक आदि पदोंके प्राप्त होनेका भी अधिकार नहीं है उनको जिसमें सबसे अधिक सामर्थ्य प्रकट होती है समस्त अनर्थ वा दोष नष्ट हो जाते हैं और समस्त पदार्थोंका ज्ञान प्रगट हो जाता है ऐसे तीर्थंकर पदकी प्राप्ति भला कैसे हो सकती है ? इसलिये स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकती।

इसके आगे आपने जो ' अट्ठ समएगसमए ' इत्यादि आगमका प्रमाण दिया था सो भी बडे भारी अज्ञानान्धकारको सूचित करता है। क्योंकि आपका आगम हमारे लिए तो अप्रमाण ही है। उस आगममें परस्पर वाधित पदार्थोंका प्रतिपादन किया है इसलिये उसकी अप्रमाणता तो प्रसिद्ध ही है। स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है यह पदार्थ भी अनेक प्रमाणोंसे बाधित है यह वात पहले अच्छी तरहसे प्रतिपादन कर ही चुके हैं।

अथवा भावस्त्री वेदसे मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु द्रव्यस्त्रीवेदसें मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती। यदि द्रव्यस्त्रीवेदसे भी मोक्षकी प्राप्ति हो तो फिर नपुंसकवेदसे भी मोक्षकी प्राप्ति हो जानी चाहिये। ' थोवा न पुंस सिद्धा ' इत्यादि आगम भी तुम्हारे यहांका है इसमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही भाववेद ग्रहण किए हैं इसलिये द्रव्यस्त्री कभी मुक्त नहीं हो सकती।

इसके आगे तुमने यह जो कहा था कि ' जिसप्रकार द्रव्यपुरुष भावस्त्री होकर मुक्त होता है उसी प्रकार द्रव्यस्त्री भी भावपुरुष होकर मुक्त हो जानी चाहिये ' इत्यादि सो भी समस्त

निष्कलंक कलाके विलाससे अलक्षित होकर कहा गया है अर्थात् ठीक नहीं है क्योंकि द्रव्य-स्त्रीवेदमें मोक्षको सिद्ध करनेकी सामर्थ्य नहीं है यह बात पहले सिद्ध कर चुके हैं। फिर भला भाववेदसे पुरुष होकर द्रव्यवेदसे स्त्रीपर्यायको धारण करनेवाली स्त्री मुक्त कैसे हो सकती है? जो द्रव्यसे मोक्षको सिद्ध करनेमें असमर्थ है वह भावसे भी उस मोक्षको सिद्ध करनेमें असमर्थ ही होगा जैसे तिर्यंच आदिक। और स्त्री द्रव्यवेदसे मोक्षको सिद्ध करनेमें असमर्थ है। इस-लिए भाव वेदसे तो चाहे जिस वेदको धारण करे परन्तु द्रव्य वेदसे पुंवेदको धारण करनेवाला पुरुष ही समस्त पूर्ण कर्मरूप शत्रुओंको जीतनेकी सामर्थ्य रखता है जैसे कि लोकमें।

भावार्थ—जिसप्रकार लोकमें महाबलको धारण करनेवाला पुरुष हाथी, घोडा, रथ आदिमें बैठकर तथा कुछ दिव्य शस्त्रोंको लेकर युद्धके मैदानमें शत्रुओंके बारको नष्टकर परम प्रभुता को धारण करता है यह बात बाल गोपाल सबमें प्रसिद्ध है। तथा अबला स्त्री बाला आदि उन स्त्रियोंके सार्थक नाम हैं क्योंकि उनमें पुरुषोंके समान सामर्थ्य नहीं होती। स्त्री शब्द आच्छादन अर्थको धारण करनेवाले स्तृञ् धातुसे बना है। इसालिये अपने आच्छादन करने रूप स्वभावसे जो दोषोंके द्वारा अपनेको और दूसरोंको सबको ढक लेवे उसको स्त्री कहते हैं। लिखा भी है——

छादयदि सयं दोसेण यदो छादयदि परं पि दोसेण।
जह्मा छादणसीला तम्हा सा वण्णिदा इत्थी ॥

अर्थात्—जो दोषोंसे अपने आपको छिपा लेती है और दूसरोंको भी छिपा लेती है इसलिये आच्छादन करनेका स्वभाव होनेसे उसे स्त्री कहते हैं। तथा स्त्रियां प्रायः अज्ञानस्वभाव भी

होती हैं इसलिये ही उन्हें बाला कहते हैं। इसतरह यह सिद्ध हुआ कि भाव वेदमेंसे वह तीनों वेदोंमेंसे चाहे जिस वेदको धारण करे परंतु द्रव्य वेदसे पुरुष ही शुद्ध शुक्लध्यानरूपी शस्त्रको लेकर कर्मरूपी शत्रुओंके समूहको नाश करता हुआ परम ऐश्वर्यको प्राप्त होता है।

कदाचित् यह कहो कि अनिवृत्ति वादर सांपराय नामके नौवें गुणस्थानमें ही वेद नष्ट हो जाता है इसलिये मुक्त होनेवाले जीवके किसी वेदकी सिद्धि नहीं होती परंतु आपका यह कहना एक अंशमें तो ठीक है क्योंकि हम भी वेदका अभाव हो जानेपर मोक्षकी प्राप्ति मानते हैं परंतु उसमें विचार यह है कि नौवें गुणस्थानमें किस वेदका नाश होता है द्रव्य वेदका? या भाव वेदका? कदाचित् द्रव्य वेदका नाश मानो तो फिर भला पुरुषरूप प्रतिमाका ही आराधन क्यों करतें हैं। क्योंकि उस अवस्थामें वेद तो कोई है ही नहीं। अथवा जो जिस द्रव्य वेदसे सिद्ध हुआ है उसका आराधन उसीके आकारकी प्रतिमा बनाकर करना चाहिए। फिर स्त्रियोंके आकारकी प्रतिमा बनाकर क्यों नहीं पूजते। कदाचित् यह कहो कि नौवें गुणस्थानमें केवल भाव वेदका नाश होता है तो फिर ठीक ही है हम भी इसको मानते ही हैं। दूसरी वात यह है कि जिसप्रकार गृहस्थ पांचवें गुणस्थानसे आगे नहीं चढ सकता उसीप्रकार स्त्रियां भी पांचवे गुणस्थानसे आगे नहीं चढ सकतीं क्योंकि उनके साक्षात् महाव्रतका अभाव है। विना साक्षात् महाव्रतोंके आगेके गुणस्थानोंमें कोई चढ नहीं सकता।

कदाचित् यह कहो कि—

"पुंवेदं वेदंतो जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तह झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति॥"

अर्थात्–पुरुष वेदका अनुभव करते हुए पुरुष क्षपकश्रेणी चढ जाते हैं तथा वे ही पुरुष शेष वेदके उदयसे भी ध्यानमें तल्लीन होकर सिद्ध होते हैं। यह भी आगम प्रमाणरूप है और इसमें स्त्रीवेदको भी मोक्षकी प्राप्तिका प्रतिपादन करना संभव बतलाया ही है। फिर भला पहले कहे हुए शास्त्रोंमें प्रतीतिके विरुद्ध पदार्थोंका कथन कैसे करते हैं अर्थात् द्रव्यस्त्रीको मोक्षका निषेध कैसे करते हो। इसलिये आगमप्रमाणसे भी द्रव्यस्त्रीको मोक्षकी सिद्धि होती है परन्तु आपका यह कहना भी सूत्रके अर्थकी अजानकारी रखनेसे (सूत्रके अर्थका वास्तविक ज्ञान न होनेसे) केवल मनोरथमात्रको सिद्ध करता है। क्योंकि द्रव्यस्त्रीके लिए मोक्षको प्रतिपादन करनेवाले वाक्य कभी संभव नहीं हो सकते। ऊपरके वाक्यमें पुंवेदके उदयके समान जो शेष वेदोंका उदय बतलाया है वह पुरुषोंको ही मोक्षका प्रतिपादन करनेवाला बतलाया है, क्योंकि दोनों जगह 'पुरुष' ऐसा खास नाम लेकर लिखा है। फिर भला द्रव्यस्त्रियां किसप्रकार क्षपक-श्रेणी चढ सकती हैं और किसप्रकार मुक्त हो सकती हैं? विचार करनेकी बात है कि मोहनीय कर्मके उदयसे उत्पन्न हुए चित्तके विकारको वेद कहते हैं और उदय भावका ही होता है द्रव्य वेदका कुछ उदय नहीं होता। यदि केवल द्रव्य वेदका ही उदय हो तो फिर स्त्रीपना किसी तरह बन ही नहीं सकेगा। इसलिये शेष वेदके उदयसे जो कहा है उसका अर्थ भाव वेद ही होता है द्रव्य वेद नहीं। द्रव्य वेदके लिए तो दोनों जगह पुरुष शब्द करके लिखा ही है।

दूसरी बात यह है कि स्त्रियोंको तो कभी मोक्षकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है कि रत्नत्रयको आराधन करनेवाले प्राणी जघन्य रीतिसे अर्थात्–अधिक से अधिक सात आठ भवोंमें मुक्त हो जाते हैं और उत्कृष्ट रीतिसे अर्थात् कमसे कम दो तीन

भवोंमें ही मुक्त हो जाते हैं। जब यह जीव सम्यग्दर्शनकी आराधना करेगा उसके बाद फिर वह किसी भी स्त्रीपर्यायमें उत्पन्न नहीं हो सकेगा फिर भला स्त्रीपर्यायसे मोक्षकी सिद्धि किस-प्रकार सिद्ध हो सकेगी? सम्यग्दर्शनके बाद तो वह सदा पुरुषपर्यायमें ही उत्पन्न होगा इस-लिए पुरुषपर्यायसे ही मोक्षकी सिद्धि हो सकती है स्त्रीपर्यायसे नहीं। कदाचित् यह कहो कि भरत चक्रवर्तीके पुत्रोंके समान कोई अनादि मिथ्यादृष्टी जीव भी अपने पहिले ही भवमें समस्त अशुभ कर्मोंको नाशकर इसीभवमें सबसे पहले रत्नत्रयका आराधन कर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं इसीतरह कोई अनादि मिथ्यादृष्टी जीव पहले भवमें समस्त अशुभ कर्मों का नाशकर स्त्रीपर्यायको धारण कर फिर उसी स्त्रीपर्यायमें रत्नत्रयका आराधन कर उसी स्त्री पर्यायसे मुक्त हो जायगा? इसमें क्या विरोध आता है परंतु यह कहना भी मुखरतासे सुन्दर दिखनेवाली खुजलीके द्वारा कहा हुआ जान पडता है अर्थात्—बिल्कुल मिथ्या है क्योंकि जब अशुभ कर्मोंका नाश पहले ही हो चुका फिर भला स्त्रीवेदकी उत्पत्ति ही किसप्रकार हो सकती है? स्त्रीवेद भी तो एक अशुभ कर्म है इसलिए अन्य अशुभ कर्मोंके साथ उसका नाश तो पहले ही हो जायगा। फिर भला स्त्रीपर्यायकी प्राप्ति ही कैसे हो सकेगी? कदाचित् यह कहो स्त्रीवेद अशुभ कर्म क्यों है? तो इसका उत्तर यह है कि वह स्त्रीवेद सम्यग्दृष्टी जीवके उत्पन्न नहीं हो सकता मिथ्यादृष्टीके ही होता है यदि वह अशुभ न हो तो सम्यग्दृष्टीके भी होना चाहिये था परंतु सम्यग्दृष्टीके नहीं होता इसलिए वह अशुभ ही है।

इसलिए सिद्ध हुआ कि स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि वे पुरुषोंसे भिन्न हैं जैसे नपुंसक। यदि पुरुषोंसे भिन्नस्वरूप स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति मान ली जायगी तो फिर

पुरुषोंसे भिन्न स्वरूप नपुंसकोंको भी मोक्षकी प्राप्ति मान लेनी पडेगी। परंतु नपुंसकोंको मोक्षकी प्राप्ति होती नहीं इसलिए स्त्रियोंको भी नहीं होती। कदाचित् यह कहो कि जिसप्रकार नपुंसकोंके समान पुरुषोंसे भिन्न होनेके कारण स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती उसीप्रकार स्त्रियोंसे भिन्न होनेके कारण नपुंसकोंके समान ही पुरुषोंको भी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होनी चाहिये। परंतु यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि यह कथन वादी प्रतिवादी दोनोंके आगमसे बाधित है। कदाचित् यह कहो कि "पुरुषोंसे भिन्न होनेके कारण स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती" यह कथन भी हमारे आगमसे बाधित है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि तुम्हारा आगम भी हमारे लिए अप्रमाण ही है। इस तरहसे भी स्त्रियोंको मोक्षकी सिद्धि नहीं हो सकती। तथा स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्तिके अभावमें एक अनुमान यह भी है "स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि वह उत्कृष्ट ध्यानका फल है जो जो उत्कृष्ट ध्यानके फल होते हैं वे सब स्त्रियोंको नहीं होते जैसे सातवें नरकमें जाना। भावार्थ—स्त्रियोंके शुभ अशुभ अथवा शुद्ध किसी भी तरहका उत्कृष्ट ध्यान नहीं होता इसलिए जैसें वे अशुभ उत्कृष्ट ध्यान न होनेके कारण सातवें नरकमें नहीं जा सकतीं वैसे ही उत्कृष्ट शुद्ध ध्यान न होनेके कारण वे मुक्त भी नहीं हो सकतीं।

इसके आगे जो तुमने कहा था कि मुक्त होनेवालेके कोई वेद नहीं रहता है क्योंकि वह नौवें गुणस्थानमें ही नष्ट हो जाता है इसलिये किसी वेदसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती सो ठीक है हम भी वेदसे ही मोक्षकी प्राप्ति नहीं मानते किंतु समस्त कर्मोंको नाश करनेमें समर्थ ऐसे तीर्थ (गुप्ति समिति आदि) व्रत और शुक्लध्यानकी प्राप्तिसे ही मोक्षकी प्राप्ति स्वीकार करते हैं परंतु वह शुक्लध्यान आदिकी प्राप्ति पुरुषको ही हो सकती है स्त्रियोंको नहीं। यह विचारशीलोंको बहुत अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

स्त्रीणां निर्वाणसिद्धिः कथमपि न भवेत्सत्यशौर्याद्यभावाद्
मायाशौचप्रपंचान्मलभयकलुषान्नीचजातेरशक्तेः ।
साधूनां नत्यभावात्प्रवलचरणताभावतः पुरुषतोन्य-
भावाद्धिंसांगकत्वात्सकलविमलसद्ध्यानहीनत्वतश्च ॥ १ ॥

अर्थात्–स्त्रियोंमें उत्तम सत्य और उत्तम शौर्य आदिका अभाव रहता है, उनमें मायाचारी और अपवित्रता बहुत अधिक रहती है वे मल और भयसे सदा कलुषित रहती हैं अशुभ कर्मोंके उदय होनेके कारण उनकी जाति नीच जाति है, उनमें उत्कृष्ट शक्ति नहीं होती, साधु लोग उन्हें कभी नमस्कार नहीं करते, उनके उत्कृष्ट चारित्रका सदा अभाव रहता है पुरुषोंसे वे भिन्न हैं, कुच कांख आदिमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंकी हिंसाकी वे कारण हैं और संपूर्ण निर्मल श्रेष्ठ शुक्लध्यान उनके होता नहीं। इन सब कारणोंके होनेसे स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकती ॥ १ ॥

इत्यवादि च संवादात्स्त्रीनिर्वाणनिवारणम् । शुभचंद्रेण संक्षेपाद्विस्तारोऽन्यत्र लोक्यताम् ॥

अर्थात्–इसप्रकार शुभचन्द्र आचार्यने वास्तविक बात जाननेकी इच्छासे बहुत थोडेसेमें यह स्त्रीको मोक्षकी प्राप्तिका निवारण वा निषेध करनेवाला प्रकरण कहा है। इसका विस्तार दूसरे ग्रंथोंमें देखना चाहिये।

इसप्रकार श्रीमद्शुभचंद्राचार्यविरचित संस्कृत संशयिवदनविदारण (श्वेतांबरियोंके मतका खंडन करनेवाले)
प्रकरणके पं० लालारामजीकृत हिंदी भाषानुवादमें यह स्त्रीको मोक्षकी प्राप्तिका
निराकरण करनेवाला दूसरा उल्लास समाप्त हुआ ॥ २ ॥

गर्भापहरणनिषेध ।

भगवान वर्द्धमान स्वामीका गर्भापहरण होना अत्यंत संभव होता है और इसीलिए उन के लिए निरौपम्य (उपमारहित) यह विशेषण लग सकता है । कदाचित् किसी दूसरे कारणसे निरौपम्य यह विशेषण लगाया जाय तो फिर उन भगवानका उत्पन्न होना, बढना, और अपहरण होना किसप्रकार बन सकेगा ? कदाचित् कोई यह शंका करे कि भगवानका जीव पहिले पुष्पोत्तर विमानमें देव था वहांसे च्युत होकर ऋषभदत्तकी स्त्री देवानंदाके उदरमें उत्पन्न हुआ और वहां तिरासी दिनतक वह ठहरा इसके बाद इंद्रको मालूम हुआ कि यह ऋषभदत्त तो नीच कुलमें उत्पन्न हुआ है इस हिसाबसे भगवानको भी नीच कुलमें उत्पन्न हुआ मानना पडेगा इसलिए उस इंद्रने हरणकश्यप नामके देवसे प्रेरणा कर वह गर्भ वहांसे उठवाया और राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलाके गर्भमें स्थापित किया । ऐसी हालतमें आमके फलके समान उसका संयोग दूसरी जगह किसप्रकार संभव हो सकेगा । भावार्थ–जिसप्रकार आमका फल तोड़ लेनेपर फिर वह दूसरे वृक्षपर नहीं जम सकता उसीप्रकार वह गर्भ एक जगहसे हटा लेनेपर फिर दूसरी जगह नहीं जम सकता परंतु यह शंका भी ठीक नहीं है क्योंकि जिसप्रकार किसी तालावके किनारे जलमें बोए हुए सफेद चांवल एक जगहसे उखाडकर दूसरी जगह लगादेने पर भी जम जाते हैं उसीप्रकार भगवानका गर्भ भी एक जगहसे हटालेनेपर भी वह दूसरी जगह जम सकता है और उसी जगह कल्याणकोत्सव होनेका उत्साह भी होता है । परंतु श्वेतांवरियोंकी यह सब कल्पना विचारपूर्वक न लिखनेके कारण अप्रमाण बनानेकी चतुरताकी शरणकी नकल करनेवाली है अर्थात्–विल्कुल अप्रमाण है । भला सोचनेकी बात है कि जिन

भगवानकी उत्पत्ति ऋषभदत्त और देवानंदाके शुक्र शोणितसे हुई है उनका गर्भकल्याणका उत्सव न मनानेके कारण उनके पंच कल्याणोंकी प्राप्ति किसप्रकार संभव हो सकेगी । दूसरी बात यह है कि जिससमय देवानंदाके उदरमें भगवानका अवतरण हुआ था उससमय इंद्रको अपने ज्ञानके द्वारा यह बात मालूम हुई थी या नहीं ? यदि उसको यह बात मालूम होगई थी तो फिर उसने गर्भकल्याणका उत्सव क्यों नहीं मनाया क्योंकि गर्भकल्याणका उत्सव तो अवश्य ही करना पडता है । यदि इंद्रने भगवान वर्द्धमानका गर्भकल्याणोत्सव नहीं मनाया तो उसे अन्य तीर्थंकरोंके गर्भकल्याणका उत्सव भी नहीं मनाना होगा और इसप्रकार करनेसे तीर्थंकर नाम कर्मरूप पुण्यप्रकृतिको अनर्थक ही मानना पडेगा । कदाचित् यह कहा जाय कि देवानंदाके उदरमें भगवानके अवतरण होनेकी बात इंद्रको मालूम नहीं हुई थी तो फिर ऐसी हालतमें इंद्रको अज्ञानी ही मानना पडेगा अथवा यह मानना पडेगा कि उसे कल्याणोंका ज्ञान होता ही नहीं है । और फिर सबसे बडी आश्चर्यकी बात तो यह है कि उसी इंद्रको पीछेसे वह बात कैसे मालूम होगई ?

इसके सिवाय श्वेताम्बरोंका जो यह कहना है कि तिरासी दिनके बाद देवने आकर वह गर्भ दूसरी जगह आरोपण कर दिया आदि' परंतु इसमें प्रश्न यह है कि भगवान वर्द्धमानने देवानंदाके उदरमें अवतरण क्यों किया था? कदाचित यह कहा जाय कि अपने पूर्वोपार्जित कर्मोंके उदयसे उन्होंने वहां अवतार लिया था तो फिर इंद्रने उन कर्मोंके उदयका निषेध किस प्रकार कर दिया ? कदाचित् यह कहा जाय कि इंद्रने अपनी सामर्थ्यसे ऐसा किया तो फिर बडी हँसीके साथ कहना पडेगा कि श्वेतांबरी लोग अपने बडे भारी मोहके माहात्म्यसे ही ऐसा कहते हैं क्योंकि भगवान जिनेंद्रदेव अनंतानंत बलशाली हैं और संसारभरके स्वामी हैं

वे भी उन कर्मोंकी गतिको रोक नहीं सकते फिर भला केवल एक स्वर्गका स्वामी इंद्र उन कर्मों की गतिको विपरीत कैसे कर सकता है? अथवा जब भगवानका जीव पुष्पोत्तर विमानका स्वामी था उससमय वह प्रथम स्वर्गके इंद्रसे भी अधिक शक्तिशाली था परंतु उस समय भी वह अपने कर्मोंको विपरीत क्यों नहीं कर सका ? यदि वह अपने कर्मोंको विपरीत कर सकता होता तो अपनी प्राण प्यारी इंद्राणीके मरने पर अशरणताका आश्रय न लेता? अथवा थोडी देरके लिये मान लीजिये कि देवोंकी शक्तियोंके अचिंत्य माहात्म्यसे ही भगवानके गर्भके भार का अपहरण किया गया परंतु यह तो बतलाइये कि वह गर्भका अपहरण किस मार्गसे किया गया? जन्म मार्गसे वा अन्य किसी मार्गसे? यदि पहिला पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् जन्ममार्गसे ही गर्भापहरण किया गया ऐसा माना जाय तो जन्ममार्गसे बाहर होना ही जन्म गिना जाता है। ऐसी हालतमें उसे जन्म मानना ही पडेगा और जन्मकल्याणका उत्सव मानना ही पडेगा। पूर्ण निर्मल त्रिलोकीनाथ भगवान वर्द्धमानका पहिले गर्भकल्याणक तो अस्वीकार किया ही था अब जन्मकल्याणक भी अस्वीकार करनेसे दो कल्याणोंका अभाव मानना पडेगा और फिर दो कल्याणोंका अभाव माननेसे अन्य कल्याणोंका भी अभाव स्वयं सिद्ध हो जायगा।

कदाचित् इन दोनों कल्याणोंका विधान मान लिया जाय तो फिर आपलोग गर्भकल्याण और जन्मकल्याण दोनों त्रिशलाके मानते ही हैं देवानंदाके भी मान लेने पर सात कल्याण मान लेने पडेंगे। कदाचित् दूसरा पक्ष स्वीकार किया जाय अर्थात् मुख आदि अन्य द्वारसे गर्भापहरण मान लिया जाय तो राजा कर्ण और नासिकेय आदि महर्षियोंका जन्म कान और

नासिका आदिसे बतलाया गया है और अन्य मतके शास्त्रोंमें जिसका उल्लेख किया गया है उसे भी सत्य क्यों नहीं मान लेना चाहिये। दूसरी बात यह है कि औदारिक शरीर उन्नत वा स्थूल होता है इसलिये वह संकुचित वा छोटा नहीं किया जा सकता और विना छोटा किये वह कान नाक आदि छोटे मार्गसे निकल नहीं सकता। लिखा भी है 'पुरुमहदुदारुरालम्'

सोचनेकी बात है कि यदि देवोंमें कर्मोंके विपरीत करनेकी शक्ति है तो फिर स्वर्गमें जाकर देव हुये सीता और बलभद्रके जीव नरकमें गये हुए लक्ष्मण और कृष्णके जीवको नरकसे बाहर क्यों नहीं निकाल लाते? दूसरी बात यह है कि जिस समय वह गर्भ त्रिशलाके गर्भमें स्थापित किया गया था उस समयसे अर्थात् गर्भस्थापनसे पाहिले छह महीने तक रत्नोंकी वृष्टि और छप्पन कुमारिका देवियोंके द्वारा माताकी सेवा आदि कहां हुई थी? और फिर उसके बाद नौ महीने तक कहां हुई? सोलह स्वप्न किसने देखे? कदाचित् कहा जाय कि दोनों जगह रत्नोंकी वर्षा हुई दोनों जगह देवियोंके द्वारा सेवा हुई और दोनोंने स्वप्न देखे तो फिर गर्भकल्याण और जन्म कल्याणका उत्सव दोनों जगह मनाना चाहिये।

एक बात यह भी है कि गर्भापहरण करते समय बालकके नाभितंतुओंका विनाश हो जायगा और नाभितंतुओंके विनाश होनेसे बालकका नाश भी मानना पडेगा। संसारके लोग भी इसे अपूर्ण गर्भपात कहते हैं फिर भला वह आमके फलके समान दूसरी जगह कैसे मिल सकता है जिसप्रकार बडा आमका फल एक जगहसे तोड लेनेपर फिर वह दूसरी जगह मिलानेसे भी नहीं मिलता [जमानेसे भी नहीं जमता] उसीप्रकार नाभितंतुओंके नाश होने पर भी फिर उस बालकका दूसरेके उदरमें संबंध नहीं हो सकता? इसविषयमें जो उखाडकर

बोये हुए चावलोंके वृक्षोंका दृष्टान्त दिया गया है सो भी अत्यन्त जबर्दस्त और छिपी हुई मूर्खताका कहना समझना चाहिये, क्योंकि इसमें भगवानके शरीरके साथ एकेंद्रियकी तुलना की गई है। दूसरी बात यह है कि इस उदाहरणका कोई संबंध ही नहीं मिलता इसलिये भी यह उदाहरण नष्ट और भ्रष्ट है। क्योंकि जिसप्रकार बीजके समान पुत्र होता है बीजको एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह डालनेसे वहीं पुत्रकी उत्पत्ति होती है और उसमें कोई दोष नहीं माना जाता उसी प्रकार शालिके कणको भी एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह आरोपण कर देनेसे कोई दोष नहीं होना चाहिये। यदि शालिका बीज एक जगहसे उठाकर दूसरी जगह जम जाय तब तुम्हारा उदाहरण ठीक बैठे सो होता नहीं। इसलिये यह उदाहरण भी ठीक नहीं है।

दूसरी बात यह है कि वर्द्धमान स्वामी ऋषभदत्तके बीजसे (वीर्यसे) उत्पन्न हुए हैं उनके लिये सज्जन लोग सिद्धार्थके पुत्र कहकर क्यों पुकारते हैं और क्यों सुनते हैं क्योंकि यह बाल गोपाल सबमें प्रसिद्ध है कि शिष्ट पुरुषोंको "दो बापसे पैदाहुआ" इस वाक्यके सिवाय संसार भरमें और कोई अनिष्ट नहीं है। फिर भला भगवानकेलिये ऐसी बुरी बात क्यों कही जाती है। इसके सिवाय एक बात यह है कि आपके शास्त्रोंमें कहीं तो लिखा है कि अषाढ शुक्ला षष्ठीके दिन त्रिशलाके उदरमें भगवानका अवतरण हुआ और फिर चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन भगवानका जन्म हुआ इसतरह नौ महीने सात दिन तक भगवान गर्भमें रहे। तथा कहीं २ भगवानके गर्भका अपहरण बतलाया गया है इसप्रकार आपके शास्त्र परस्पर विरोधी पदार्थोंको कहनेवाले हैं इसलिये वह आपका आगम न तो भगवान सर्वज्ञदेवका कहा हुआ ही माना जा सकता है और न प्रमाण ही माना जा सकता है इसलिये यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो गई

कि भगवान वर्द्धमान स्वामीका गर्भापहरण नहीं किया गया था क्योंकि वे उत्तम मनुष्य जातिके थे जिसप्रकार अन्य शलाका पुरुष उत्तम मनुष्य जातिके थे और उनका गर्भापहरण नहीं किया गया था उसीप्रकार भगवान वर्द्धमानका भी नहीं किया गया था।

स्याद्वादामोघवादः स्फुटविकटघटत्याटवाटोपत्रेट—
प्राकट्योत्कट्येतजःसितपटघटनाघातनैकप्रवीरः।
प्रोद्यद्विद्याविनोदप्रमदमदभ्रैहैकांतदर्पप्रमाथी
जीयाद् बुद्ध्या प्रसिद्धः शमदमकलितः श्रीशुभेंदुर्जिनोत्र ॥ १ ॥

जिनके वचन स्याद्वाद रूप होनेसे कभी व्यर्थ नहीं होते, प्रसिद्ध और भयंकर अज्ञानसे उत्पन्न हुए उत्कट तेजको धारण करने वाली श्वेतांबरोंकी घटनाको नाश करनेके लिये जो एक अद्वितीय वीर हैं दैदीप्यमान विद्याके विनोदसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट मदके तेजसे जो एकांतके अभिमानको चूर्ण करने वाले हैं, जिनकी बुद्धि संसार भरमें प्रसिद्ध है। और जो शम दम (शांतता और इंद्रियोंका दमन) दोनोंसे सुशोभित हैं ऐसे श्रीजिनेंद्रदेव अथवा श्रीशुभचंद्राचार्य इस संसारमें सदा जयशील हों ॥ १ ॥

श्रीमतो वर्द्धमानस्याहृतेर्भ्रूणस्य वारणम्। प्रणीतं शुभचंद्रेण जीयादाचंद्रतारकम् ॥ २ ॥

यह श्रीशुभचंद्राचार्यके द्वारा कहा हुआ श्रीवर्द्धमान स्वामीके गर्भापहरणका निषेध जब तक चंद्रमा और तारे रहें तबतक जयशील रहे।

इसप्रकार श्रीमद्शुभचंद्राचार्यविरचित संसकृत संशयिवदनविदारण (श्वेतांबरियोंके मतका खंडन करनेवाले) प्रकरणके पं० लालारामजीकृत हिंदी भाषानुवादमें वर्द्धमान भगवानके गर्भापहरणका निराकरण करनेवाला तीसरा उल्लास और यह ग्रंथ समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

संशयिवदनविदारण

(समाप्त)